अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका - जनवरी २०१७

उद्‌बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि

विषय-सूची

सम्पादकीय/श्रीमां की प्रार्थना		३
नववर्ष की प्रार्थनाएं एवं सन्देश		५
श्रीअरविन्द आश्रम	रवीन्द्रजी	१३
नयी सुबह का स्वागत (कविता)	श्री विश्वनाथ	२२
श्रीअरविन्दकृत 'मानव एकता का आदर्श' पर आधारित : संक्रमण-काल—कब तक?		२३
उनकी कृपा बरसेगी अवश्य...	श्रीअरविन्द	२६
जगत् की वर्तमान अवस्था से निकलने का उपाय	श्रीमां	२८
हमारे शिक्षा-केन्द्र का उद्देश्य	'श्रीमातृवाणी' से	३३
ढीलेपन से सावधान	पुराणी जी	३६
पथ पर	श्रीअरविन्द	३८
श्रीअरविन्द का एक पत्रांश		४०
'पुरोधा'		
दैनन्दिनी		४१
एक कप्तान के साथ श्रीमां का पत्र-व्यवहार	'श्रीमातृवाणी' से	४५
मेहरबानी करके ज़रा ख़याल रखियेगा...	वन्दना	४८
सुमन का शिव-संकल्प	'मधु-सञ्चय' से साभार	५२
चरणों में अर्पित हैं (कविता)	आशा अग्रवाल	५४
शुभं भवतु नववर्षं सर्वेषाम्	वन्दना	५५
सबके लिए नववर्ष शुभ हो		५६

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

Website : www.aurosociety.org

सम्पादिका : वन्दना

प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी, पॉण्डिचेरी—६०५००२

मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पॉण्डिचेरी

सम्पादकीय : जनवरी के इस अंक में हम एक नूतन प्रयोग कर रहे हैं कि एक ही विषय पर श्रीमां तथा श्रीअरविन्द के लेखों का संकलन न देकर विभिन्न विषयों का थाल परोसने का प्रयास कर रहे हैं जिसमें श्रीमां-श्रीअरविन्द की कृतियों के साथ-साथ कविताओं, कहानियों इत्यादि का भी समावेश है। आशा है कि दूसरे अंकों की तरह हमारे पाठकों को यह अंक भी रास आयेगा।

तो चलिये, आप और हम, डंके की चोट पर वर्ष २०१७ का धूमधाम से स्वागत करें। यही प्रार्थना है कि यह वर्ष समस्त धरा के लिए सच्चे अर्थों में "शुभतम" हो...। आमीन!

श्रीमां की प्रार्थना

१ जनवरी १९१४

हे समस्त वरदानों के 'परम वितरक', तुझे, जो इस जीवन को शुद्ध, सुन्दर और शुभ बना कर उसे औचित्य प्रदान करता है, तुझे, हे हमारी नियति के स्वामी, हमारी अभीप्साओं के लक्ष्य, इस नये वर्ष का पहला क्षण समर्पित था।...

मैं प्रगाढ़ भक्ति और असीम कृतज्ञता के साथ तेरी हितकारी भव्यताओं के आगे प्रणत हूं। पृथ्वी की ओर से मैं तुझे अपने-आपको प्रकट करने के लिए धन्यवाद देती हूं। मैं उसकी ओर से तुझसे याचना करती हूं कि तू अपने-आपको प्रकाश और प्रेम की अबाध वृद्धि में अधिकाधिक अभिव्यक्त कर। हमारे विचारों, हमारे भावों और हमारे कर्मों का प्रभुसत्तासम्पन्न स्वामी हो जा। तू ही हमारी सत्ता की यथार्थता, एकमात्र सद्वस्तु है। तेरे बिना सब कुछ मिथ्या और भ्रम है, दुःखपूर्ण अन्धकार है। **तेरे अन्दर ही है जीवन, ज्योति और आनन्द। तेरे ही अन्दर है परम शान्ति।**

... हम वैश्व जीवन के एक विशेष सौभाग्यशाली मुहूर्त में हैं,
जब धरती की हर चीज को नयी सृष्टि के लिए,
बल्कि यूं कहें,
शाश्वत सृजन के अन्दर
एक नयी अभिव्यक्ति के लिए तैयार किया जा रहा है।

—श्रीमां

नव वर्ष की प्रार्थनाएं एवं सन्देश

आइये, २०१७—नूतन वर्ष के इस अंक का शुभारम्भ हम श्रीमां द्वारा नववर्ष पर दी गयी प्रार्थनाओं (१९३३-१९७३) से करें।

१९३३

नये वर्ष के जन्म के साथ-साथ हमारी चेतना का भी नया जन्म हो!

चलो, भूतकाल को बहुत पीछे छोड़ कर हम ज्योतिर्मय भविष्य की ओर दौड़ चलें।

१९३४

हे प्रभु, वर्ष का अन्त हो रहा है और हमारी कृतज्ञता तेरे सामने झुक रही है।

हे नाथ! वर्ष का नया जन्म हो रहा है और हमारी प्रार्थना तेरी ओर उठ रही है।

वर दे कि यह हमारे लिए भी एक नये जीवन की उषा हो।

१९३५

हे प्रभु! हमारे अन्दर जो कुछ बनावटी और मिथ्या है, जो कुछ ऊपरी दिखावा और अनुकरण करने वाला है, वह सब कुछ आज (३१ दिसम्बर १९३४ की शाम को) सन्ध्या समय हम तुझे समर्पित कर रहे हैं। वह सब कुछ समाप्त होने वाले वर्ष के साथ-साथ हमारे अन्दर से गायब हो जाये। जो कुछ पूरी तरह से सत्य, निष्कपट, ऋजु और पवित्र है वही आरम्भ होने वाले नये वर्ष में हमारे अन्दर बना रहे।

१९३६

हे प्रभो! यह वर्ष तेरी विजय का वर्ष हो! हम ऐसी पूर्ण निष्ठा के

लिए अभीप्सा करते हैं जो हमें उस विजय के योग्य बनाये।

१९३७

तेरी जय हो प्रभो! सब विघ्नों पर विजय पाने वाले नाथ! तेरी जय हो! ऐसी कृपा कर कि हमारे अन्दर कोई भी चीज तेरे कार्य में बाधक न हो।

१९३८

हे प्रभो! वर दे कि हमारे अन्दर की प्रत्येक चीज तेरी सिद्धि के लिए तैयार हो जाये! इस नये वर्ष की देहली पर खड़े होकर हम तुझे नमस्कार कर रहे हैं, हे प्रभो! हे परम सिद्धिदाता!

१९३९

यह शुद्धि का वर्ष होगा।

हे प्रभो, भगवान् के काम में भाग लेने वाले सभी कार्यकर्ता तुझसे प्रार्थना करते हैं कि परम पवित्रीकरण द्वारा वे अहंकार के शासन से मुक्त हो जायें।

१९४०

नीरवता और प्रत्याशा का वर्ष...

भगवन्! हम एकमात्र तेरी कृपा पर पूरी तरह आश्रित रहें।

१९४१

संसार अपने आध्यात्मिक जीवन की रक्षा करने के लिए युद्ध कर रहा है जिसे विरोधी और आसुरिक शक्तियों के आक्रमण ने संकट में डाल रखा है।

हे प्रभो! हम यह अभीप्सा करते हैं कि हम तेरे वीर योद्धा बनें ताकि तेरी महिमा इस पृथ्वी पर अभिव्यक्त हो।

१९४२

तेरी जय हो, सब शत्रुओं पर विजय पाने वाले प्रभु! तेरी जय हो!

हमें ऐसी शक्ति दे कि हम अन्त तक अचल-अटल बने रहें और तेरी विजय में भाग ले सकें।

१९४३

वह समय आ गया है जब हमें एक चुनाव, मौलिक और सुनिश्चित चुनाव करना होगा।

हे प्रभो! हमें ऐसी शक्ति दे कि हम मिथ्यात्व का त्याग कर सकें, पवित्र और तेरी विजय के उपयुक्त पात्र बन कर तेरे सत्य में ऊपर उठ सकें।

१९४४

हे प्रभो, समस्त मनुष्य जाति तुझसे प्रार्थना करती है कि तू उसे बार-बार उन्हीं मूर्खताओं में जा गिरने से बचा।

ऐसी कृपा कर कि जो भूलें पहचानी जा चुकी हैं, वे फिर से नये सिरे से दुहरायी न जायें।

अन्त में, वर दे कि मनुष्यजाति के कर्म उन आदर्शों को ठीक-ठीक और सच्चे तौर पर प्रकट करें जिनकी उसने घोषणा की है।

१९४५

यह पृथ्वी तब तक सजीव और स्थायी शान्ति का उपभोग नहीं कर सकती जब तक मनुष्य अपने अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहारों में भी पूर्ण रूप से सत्यपरायण होना नहीं सीख लेते।

हे प्रभो! हम इसी पूर्ण सत्यपरायणता के लिए अभीप्सा करते हैं।

१९४६

हे प्रभो! हम तेरी शान्ति चाहते हैं, शान्ति का व्यर्थ आभास नहीं; तेरी स्वतन्त्रता चाहते हैं, स्वतन्त्रता का दिखावा नहीं; तेरी एकता चाहते हैं, एकता की छायामूर्ति नहीं। कारण, एकमात्र तेरी शान्ति, तेरी स्वतन्त्रता और तेरी एकता ही उस अन्धी हिंसा, छल-कपट और मिथ्यात्व को जीत सकती है जो अभी तक पृथ्वी पर राज्य कर रहे हैं।

हे नाथ! वर दे, जिन लोगों ने तेरी विजय के लिए इतनी बहादुरी के साथ युद्ध किया है और दुःख झेला है, वे इस विजय के सच्चे और वास्तविक परिणामों को इस जगत् में चरितार्थ होते देखें।

१९४७

जिस समय हर चीज बुरी से अधिक बुरी अवस्था की ओर जाती हुई प्रतीत होती है, ठीक उसी समय हमें अपनी महती श्रद्धा का परिचय देना चाहिये और यह जानना चाहिये कि भगवत्कृपा कभी हमारा साथ नहीं छोड़ेगी।

१९४८

बढ़ते चलो, निरन्तर बढ़ते चलो!
सुरंग के अन्त में है ज्योति...
युद्ध के अन्त में है विजय!

१९४९

हे नाथ, नये वर्ष से पहले की शाम को मैंने तुझसे पूछा कि मुझे क्या कहना चाहिये। तूने मुझे दो चरम सम्भावनाएं दिखा दीं और चुप रहने का आदेश दिया।

१९५०

बोलो मत, करो।

घोषणा न करो, कार्यान्वित करो।

१९५१

नाथ, हम धरती पर तेरा रूपान्तर का काम पूरा करने के लिए हैं। यही हमारा एकमात्र संकल्प और हमारी एकमात्र धुन है। वर दे कि यही हमारा एकमात्र कार्य हो और हमारे सब कर्म इसी एक उद्देश्य की ओर बढ़ने में सहायक हों।

१९५२

हे नाथ, तूने हमारी श्रद्धा की गुणवत्ता की परीक्षा लेने और हमारी सच्चाई को अपनी कसौटी पर परखने का निश्चय किया है। वर दे कि हम इस अग्नि-परीक्षा में से अधिक विशाल और अधिक पवित्र होकर निकलें।

१९५३

नाथ, तूने हमसे कहा है : हार न मानो, डटे रहो। जब सब कुछ डूबता हुआ लगता है तभी सब कुछ बचा लिया जाता है।

१९५४

मेरे स्वामी, इस साल के लिए सबको तुम्हारी यही सलाह है :

"किसी चीज के बारे में डींग न मारो। तुम्हारे कार्य ही तुम्हारे लिए बोलें।"

१९५५

कोई भी मानवीय संकल्प भागवत संकल्प के सामने नहीं टिक सकता। आओ, हम अपने-आपको स्वेच्छा के साथ, अनन्य भाव से भगवान् के पक्ष में रखें और, अन्त में विजय निश्चित है।

१९५६

बड़ी-से-बड़ी विजयें सबसे कम शोर मचाने वाली होती हैं।
नये जगत् के प्रकट होने की घोषणा ढोल बजा कर नहीं की जाती।

१९५७

विजय केवल वही शक्ति पा सकती है जो विरोधी अशुभ शक्ति से ज्यादा महान् हो।

क्रूस पर चढ़ा हुआ शरीर नहीं, महामहिमान्वित शरीर ही संसार का उद्धार करेगा।

१९५८

हे प्रकृति, हमारी पार्थिव मां! तूने कहा है कि तू सहयोग देगी और इस सहयोग की भव्य महिमा की कोई सीमा नहीं।

१९५९

निश्चेतना की एकदम तली में जहां वह बहुत कठोर, अनम्य, संकरी और दमघोंटू है, मैं एक ऐसी सर्वसशक्त कमानी पर जा पहुंची जिसने तुरन्त मुझे निराकार, निःसीम 'बृहत्' में उछाल दिया जो एक नये जगत् के बीजों से स्पन्दित हो रहा था।

१९६०

जानना अच्छा है,
जीना और भी अच्छा है,
होना, वह सबसे अच्छा है।

१९६१

आनन्द की यह अद्‌भुत सृष्टि, धरती पर उतरने के लिए हमारी पुकार की प्रतीक्षा में हमारे द्वारे खड़ी है...।

१९६२

हमें पूर्णता की प्यास है। लेकिन उस मानव पूर्णता की नहीं जो अहंकार की पूर्णता है और दिव्य पूर्णता में बाधा देती है।

लेकिन उस एकमात्र पूर्णता की जिसमें 'शाश्वत सत्य' को धरती पर प्रकट करने की शक्ति है।

१९६३

चलो, भागवत मुहूर्त के लिए तैयारी करें।

१९६४

क्या तुम तैयार हो?

१९६५

सत्य के आगमन को नमस्कार।

१९६६

आओ, हम सत्य की सेवा करें।

१९६७

मनुष्यो, देशो और महाद्वीपो!
चुनाव अनिवार्य है :

सत्य या फिर रसातल।

१९६८

हमेशा युवा बने रहो, पूर्णता प्राप्त करने का प्रयास कभी बन्द मत करो।

१९६९

कथनी नहीं—करनी।

१९७०

जगत् एक बहुत बड़े परिवर्तन की तैयारी कर रहा है।
क्या तुम सहायता करोगे?

१९७१

धन्य हैं वे लोग जो भविष्य की ओर छलांग मारते हैं।

१९७२

आओ, हम सब श्रीअरविन्द की शताब्दी के योग्य बनने की कोशिश करें।

१९७३

जब तुम एक ही साथ समस्त संसार के बारे में सचेतन होते हो तब तुम भगवान् के बारे में सचेतन हो सकते हो।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १५, पृ. १८२-९४

श्रीअरविन्द आश्रम

(स्व. श्री रवीन्द्रजी द्वारा लिखी पुस्तक 'लाल कमल' का एक पूरा अध्याय हम यहां उद्धृत कर रहे हैं। इसमें आश्रम के चहुंमुखी विकास के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है।—सं.)

सारा भारत विविध प्रकार के आश्रमों से भरा हुआ है। प्रश्न उठता है कि श्रीअरविन्दाश्रम का विशेष प्रयोजन क्या है? माताजी जब फ़्रांस में रहा करती थीं तो उनसे बहुत-से लोगों ने कहा था, 'क्या करें हम, भगवान् का भजन करना चाहते हैं पर सारी शक्ति रोटी-कपड़ा जुटाने में ही लग जाती है, भगवान् के लिए न समय बचता है न शक्ति।' माताजी सोचा करती थीं कि अगर कभी मुझे अवसर मिला तो मैं एक ऐसे स्थान की नींव रखूंगी जहां सब भौतिक झंझटों से छुट्टी पाकर आदमी भगवान् में ही मस्त रह सके।

माताजी श्रीअरविन्द से मिलीं तो उनके आगे यह सवाल आया कि पहले अपने-आप सिद्धि पा लें या औरों का मार्गदर्शन करें। उन्हें इस विषय का फैसला करने की जरूरत नहीं पड़ी। उनके और श्रीअरविन्द के चारों ओर स्वाभाविक रूप से बिना किसी प्रकार की कोशिश के लोग साधना के लिए इकट्ठे होने लग गये, यही आश्रम का श्रीगणेश था। माताजी और श्रीअरविन्द ने कई बार कहा है कि आश्रम उनकी प्रयोगशाला है जहां वे भविष्य के लिए परीक्षण कर रहे हैं। यह परीक्षण किसलिए हो रहा है यह जानने के लिए जरूरी है कि हम यह जानें कि उनके कार्य का उद्देश्य क्या है। २४-२-१९३६ को माताजी ने कहा था कि संसार के बारे में तीन मुख्य धारणाएं हैं :

१. शंकर और बुद्ध के अनुसार संसार एक भ्रान्ति है, अविद्या है और अविद्या के कारण पैदा होने वाले दुःख-दर्द का क्षेत्र है। करने-योग्य काम बस एक ही है : जितनी जल्दी हो सके इसमें से निकल जाओ और आदि-असत् और अव्यक्त में विलीन हो जाओ।

२. प्रचलित वेदान्त—जगत् तत्त्वतः भगवान् है क्योंकि भगवान् सर्वव्यापक हैं, लेकिन बाह्य अभिव्यक्ति विकृत, अन्धकारमय, अविद्यामय और विपरीत है। करने-लायक चीज बस यही है कि आन्तरिक ब्रह्म के

बारे में सचेतन हो जाओ और उसी चेतना में स्थिर रहो, जगत् के बारे में चिन्ता न करो। क्योंकि यह बाहरी दुनिया नहीं बदल सकती और हमेशा निश्चेतना और अविद्या की स्वाभाविक अवस्था में रहेगी।

३. श्रीअरविन्द की दृष्टि—संसार जैसा कि अभी है वह दिव्य सृष्टि नहीं है जो उसे होना है बल्कि उसका धुंधला और विकृत रूप है। यह दिव्य चेतना और इच्छा की अभिव्यक्ति नहीं है, लेकिन उसे वही बनना है, उसकी रचना भगवान् के सभी रूपों और पहलुओं में, ज्योति और ज्ञान, शक्ति, प्रेम और सौन्दर्य में विकसित होने के लिए हुई है।

उसके बारे में हमारी यही कल्पना है और हम इसी उद्देश्य का अनुसरण करते हैं।

एक और पत्र में माताजी कहती हैं : "सामान्य साधनाओं का लक्ष्य होता है सच्चिदानन्द के साथ ऐक्य और जो वहां पहुंच जाते हैं वे अपनी निजी मुक्ति से सन्तुष्ट होते हैं और जगत् को अपनी दुरवस्था में छोड़ जाते हैं। इसके विपरीत, जहां औरों की साधना का अन्त होता है वहां से श्रीअरविन्द की साधना शुरू होती है। एक बार भगवान् के साथ ऐक्य सिद्ध हो जाये तो उस सिद्धि को नीचे उतार कर बाहरी संसार और धरती पर जीवन की परिस्थितियों को यहां तक बदलना कि पूर्ण रूपान्तर सिद्ध हो जाये, इस लक्ष्य के अनुसार पूर्णयोग के साधक संसार से निवृत्त होकर ध्यान-धारणा का जीवन बिताने में नहीं लग जाते। हर एक को कम-से-कम अपना एक-तिहाई समय किसी उपयोगी काम में लगाना चाहिये।"

हमारी सत्ता के बहुत-से अंग होते हैं। हठयोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग आदि अपने-अपने पथ के अनुसार किसी-न-किसी भाग को लेकर चलते हैं, किन्तु श्रीअरविन्द के अनुसार, "उनके योग में सभी भागों के लिए एक ही साधना है, यहां कोई मानसिक, प्राणिक, भौतिक साधना नहीं है जो हर भाग को अलग-अलग लेती हो। साधना की क्रिया कभी-कभी अलग-अलग भागों पर होती है, लेकिन साधना हमेशा एक ही रहती है।"

तो इन्हीं उद्देश्यों को लेकर श्रीअरविन्दाश्रम का आरम्भ हुआ था। उसके आरम्भ की घोषणा नहीं की गयी, उसके शिलान्यास का समारोह नहीं हुआ और उसके लिए कहीं बाजे नहीं बजाये गये। बस वट का एक बीज धरती में पड़ गया और उसमें से पौधा निकल आया। यह माताजी

और श्रीअरविन्द का स्वप्न साकार हो रहा था। बहुत लम्बे अरसे के बाद माताजी ने १९५४ में अपने इस स्वप्न का इस तरह वर्णन किया :

"संसार में एक ऐसा स्थान होना चाहिये जिसे कोई देश या राष्ट्र अपनी ही सम्पत्ति न कह सके, ऐसा स्थान जहां सब लोग पूरी स्वतन्त्रता से विश्व-नागरिक बन कर एकमात्र सत्ता—परम सत्य—की आज्ञा का पालन करते हुए रह सकेंगे। वह शान्ति, एकता और सामञ्जस्य का स्थान होगा जहां मनुष्य की सारी युद्ध-वृत्तियों का उपयोग दुःख और दर्द को जीतने में, अपनी कमजोरियों और अज्ञान पर प्रभुत्व प्राप्त करने में तथा अपनी सीमाओं और अशक्यताओं पर विजय प्राप्त करने में होगा, ऐसा स्थान जहां मामूली इच्छाओं और आवेगों की तृप्ति तथा भौतिक सुख और आमोद-प्रमोद की अपेक्षा, आत्मा की आवश्यकताओं और प्रगति को अधिक महत्त्व दिया जायेगा। इस स्थान पर बच्चे अपनी आत्मा के साथ सम्बन्ध खोये बिना समग्र रूप से बढ़ और विकसित हो सकेंगे; शिक्षा भी यहां परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने, प्रमाण-पत्र प्राप्त करने अथवा ऊंचे पद पाने के लिए नहीं दी जायेगी, वह विभिन्न क्षमताओं को बढ़ाने और नयी क्षमताओं को प्रकट करने में सहायता देगी। इस स्थान पर सेवा करने और संगठित करने के अवसर उपाधियों और पदों का स्थान नहीं लेंगे। प्रत्येक व्यक्ति की शारीरिक आवश्यकताओं को समान रूप से पूरा किया जायेगा। सामान्य अवस्था में मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक श्रेष्ठता जीवन के सुखों व शक्तियों के बढ़ाने में नहीं, बल्कि कर्तव्यों और जिम्मेदारियों की वृद्धि में अभिव्यक्ति पायेगी। सभी लोगों को सभी प्रकार का कलात्मक सौन्दर्य, चित्रकला, शिल्प, संगीत, साहित्य आदि समान रूप से प्राप्त होगा। इस कलात्मक सौन्दर्य का आनन्द प्रत्येक व्यक्ति अपनी सामाजिक या आर्थिक परिस्थिति के बल पर नहीं, बल्कि अपनी आन्तरिक क्षमताओं के अनुपात में ही प्राप्त कर सकेगा; क्योंकि इस आदर्श-स्थान में धन सम्राट् नहीं होगा। भौतिक सम्पत्ति तथा सामाजिक पद की अपेक्षा व्यक्तित्व का अधिक मूल्य होगा। यहां पर काम आजीविका के लिए नहीं, बल्कि अपने-आपको अभिव्यक्त करने और अपनी क्षमताओं तथा सम्भावनाओं को विकसित करने के लिए होगा; साथ ही, यह काम पूरे समुदाय के लिए भी होगा। दूसरी ओर समुदाय हर एक के निर्वाह तथा कार्यक्षेत्र का प्रबन्ध करेगा। संक्षेप में, यह ऐसा स्थान होगा

जहां मानव-सम्बन्ध, जो प्रायः ऐकान्तिक रूप से प्रतियोगिता और संघर्ष पर आधारित होते हैं, वे अधिक अच्छा करने की स्पर्धा तथा सहयोग में और भ्रातृभाव में बदल जायेंगे।

निश्चय ही, पृथ्वी अभी ऐसे आदर्श को चरितार्थ करने के लिए तैयार नहीं है, क्योंकि अभी मानव के पास इसे समझने और स्वीकार करने के लिए आवश्यक ज्ञान नहीं है, न इसे कार्यान्वित करने के लिए अनिवार्य सचेतन शक्ति ही है। इसीलिए, मैं इसे स्वप्न कहती हूं।

फिर भी, यह स्वप्न वास्तविकता बनने की तैयारी में है। हम श्रीअरविन्दाश्रम में अपने मर्यादित साधनों के अनुसार एक छोटे पैमाने पर यही करने का प्रयास कर रहे हैं। उपलब्धि अभी पूर्णता से काफी दूर है, फिर भी, प्रगति हो रही है, धीरे-धीरे हम अपने लक्ष्य की ओर बढ़ रहे हैं।

हम आशा करते हैं कि एक दिन वर्तमान दुर्व्यवस्था में से निकल कर अधिक सत्य और अधिक समस्वर नये जीवन में प्रवेश के लिए हम इसे संसार के सामने एक क्रियात्मक और प्रभावशाली साधन के रूप में रख सकेंगे।"

आश्रम की नींव तो पड़ गयी, लेकिन इसका विस्तार किन नियमों के अनुसार हुआ यह कहना मुश्किल है। आश्रम में कौन प्रवेश पा सकता है और कौन नहीं, इसका निर्णय स्वयं माताजी किया करती थीं।

किसी ने माताजी से इस विषय में पूछा तो उन्होंने कहा :

"प्राचीन काल में शिष्य को दीक्षा-हेतु अपनी योग्यता प्रमाणित करने के लिए कड़ी परीक्षाएं देनी पड़ती थीं। हम यहां उस तरीके का अनुसरण नहीं करते। प्रकट रूप से कोई परीक्षा या कसौटी नहीं होती, लेकिन अगर तुम सच्ची बात देखो तो तुम्हें पता चलेगा कि यहां की परीक्षा बहुत ज्यादा कठिन है। वहां शिष्य जानता था कि वह परीक्षा-काल में से गुजर रहा है और उसे उत्तीर्ण हो जाने पर प्रवेश मिल जाता था। लेकिन यहां तुम्हें जीवन का सामना करना पड़ता है और पग-पग पर तुम्हें देखा जाता है। केवल तुम्हारी बाह्य क्रियाओं की ही गिनती नहीं होती बल्कि हर एक विचार और आन्तरिक क्रिया को देखा जाता है, हर प्रतिक्रिया की ओर ध्यान दिया जाता है। तुम वन के एकान्त में जो करते हो उसका नहीं, जीवन-संग्राम में जो करते हो उसका महत्त्व है।

क्या तुम ऐसी परीक्षाओं के लिए अपने-आपको प्रस्तुत करने को तैयार हो? तुम्हें अपने विचार, आदर्श, मूल्य, रुचियों और मतों को फेंक देना होगा। हर चीज नये सिरे से सीखनी होगी। अगर तुम इस सबके लिए तैयार हो तो लगाओ डुबकी, वरना पास फटकने की कोशिश मत करो।"

और इन परीक्षाओं के बारे में कुछ और प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा:

"पूर्णयोग में ऐसी परीक्षाओं की एक अविच्छिन्न शृंखला होती है जिनमें से तुम्हें चेतावनी के बिना गुजरना पड़ता है और इस तरह तुम्हें हमेशा सावधान और चौकन्ना रहना पड़ता है।

परीक्षकों के तीन दल ये परीक्षाएं लेते हैं। ऐसा लगता है कि उनका एक दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं है, उनके तरीके बहुत भिन्न होते हैं। कभी-कभी तो वे देखने में इतने परस्पर विरोधी मालूम होते हैं कि ऐसा लगता है जैसे यह सम्भव ही नहीं कि वे एक ही लक्ष्य की ओर ले जा रहे हों। फिर भी वे एक दूसरे के पूरक होते हैं, एक ही उद्देश्य के लिए काम करते हैं और परिणाम की पूर्णता के लिए सभी अनिवार्य हैं। तीन प्रकार के परीक्षक ये हैं: प्राकृतिक शक्तियों द्वारा नियुक्त, आध्यात्मिक और दिव्य शक्तियों द्वारा नियुक्त और विरोधी शक्तियों द्वारा नियुक्त। इनमें अन्तिम प्रकार के देखने में सबसे ज्यादा भ्रामक होते हैं और अनजान में बिना तैयारी पकड़े जाने से बचने के लिए एक सतत सावधानी, सच्चाई, निष्कपटता और विनम्रता की अवस्था जरूरी होती है।

बिलकुल ही मामूली परिस्थितियां, दैनिक जीवन की घटनाएं, देखने में अधिक-से-अधिक नगण्य लोग या चीजें, ये सब इनमें से किसी-न-किसी परीक्षक दल के होते हैं। परीक्षाओं के इस विशाल और जटिल संगठन में वे परीक्षाएं जो जीवन में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण मानी जाती हैं, सबसे सरल होती हैं, क्योंकि उनके लिए तुम तैयार और सावधान होते हो। रास्ते के छोटे-छोटे पत्थरों पर ठोकर खाना ज्यादा आसान होता है क्योंकि वे ध्यान नहीं खींचते।

सहनशीलता और नमनीयता और निर्भीकता ऐसी चीजें हैं जिनकी भौतिक प्रकृति की परीक्षाओं में खास जरूरत होती है।

आध्यात्मिक परीक्षाओं के लिए अभीप्सा, विश्वास, आदर्शवाद, उत्साह और उदारतापूर्ण आत्मोत्सर्ग आवश्यक हैं।

और विरोधी शक्तियों की परीक्षाओं के लिए जागरूकता, सच्चाई, निष्कपटता और विनम्रता की खास जरूरत होती है।

और यह कल्पना न करो कि एक ओर वे हैं जिन्हें परीक्षा देनी होती है और दूसरी ओर वे जो परीक्षा लेते हैं। परिस्थितियों और समय के अनुसार हम सभी परीक्षक और परीक्षार्थी दोनों होते हैं और यह भी हो सकता है कि तुम एक ही साथ परीक्षक और परीक्षार्थी दोनों होओ। और इससे जो लाभ होता है वह राशि और गुण दोनों पर तुम्हारी अभीप्सा की तीव्रता और चेतना की जागृति पर निर्भर होता है।

और अन्त में एक आखिरी सलाह : अपने-आपको परीक्षक के रूप में कभी न रखो। जब कि यह निरन्तर याद रखना अच्छा है कि शायद हम किसी महत्त्वपूर्ण परीक्षा में से गुजर रहे हों, यह कल्पना करना बहुत अधिक खतरनाक है कि तुम औरों की परीक्षा लेने के लिए जिम्मेदार हो। यह अत्यधिक हास्यास्पद और हानिकर प्रकार के दम्भ के लिए खुला दरवाजा है। परम प्रज्ञा इन चीजों का निर्णय करती है, अज्ञानमय मानव इच्छा नहीं।"

(१२ नवम्बर १९५७)

श्रीअरविन्दाश्रम में कभी जात-पांत का, ऊंच-नीच का, धन और दारिद्र्य का विचार नहीं किया गया। माताजी ने कहा था कि गुफा में बैठ कर साधना सफल नहीं हो सकती। वहां तुम्हें अपने दोषों का पता ही नहीं चलता। आश्रम में मानवजीवन की सभी प्रकार की समस्याओं से पाला पड़ता है।

जो लोग आध्यात्मिक जीवन के लिए आश्रम में आते हैं उनके बारे में श्रीअरविन्द कहते हैं :

"जब तुम आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश करते हो तो पारिवारिक सम्बन्ध झड़ जाते हैं क्योंकि वे साधारण प्रकृति की चीजें हैं—व्यक्ति अपनी पुरानी चीजों के बारे में उदासीन हो जाता है। इसमें कोई कठोरता हर्गिज न होनी चाहिये। रिश्तेदारी के पुराने सम्बन्धों से बंधे रहने का मतलब होगा, सामान्य प्रकृति से बंधे रहना और यह आध्यात्मिक प्रगति में बाधक होता है।"

एक और जगह कहा है, "इस योग में व्यक्तिगत सम्बन्धों के बारे में यह नियम है कि सभी व्यक्तिगत सम्बन्ध साधक और भगवान् के एकमात्र सम्बन्ध में विलीन हो जायें।" (श्रीअरविन्द के एक पत्र से)

जैसे-जैसे लोग इकट्ठे होते गये आश्रम की आवश्यकताएं भी बढ़ती

गयीं। यहां माताजी का एक उद्धरण देना अप्रासंगिक न होगा : "हमारा सारा प्रयास इसी बात के लिए है कि हम अपने समस्त जीवन और कार्यकलाप को इस (उच्चतर) चेतना के शासन में ला सकें—१९२६ में जब श्रीअरविन्द ने आश्रम का सारा भार मुझे सौंपा तब से यह एक जंगल के विकास के रूप में बढ़ता जा रहा है। सभी विभाग कृत्रिम योजना द्वारा नहीं बल्कि जीवित-जाग्रत् आवश्यकता के कारण बने हैं—यही निरन्तर विकास और अनन्त प्रगति का रहस्य है।"

तरह-तरह की क्षमतावाले लोग आने लगे और उनकी विशेष क्षमताओं का उपयोग होने लगा। प्राणीमात्र के लिए भोजन तो पहली आवश्यकता है ही तो आश्रम में भी भोजनालय, गोशाला, चावल, तरकारी, फल, फूल आदि पैदा करने के लिए खेतों और बगीचों का सूत्रपात हुआ। कपड़े सीने के लिए सिलाई-विभाग बना। कढ़ाई, बुनाई, रंगाई आदि शुरू हुईं और दूसरे महायुद्ध के परिणामस्वरूप माताजी और श्रीअरविन्द की छत्रच्छाया में आये हुए बच्चों के लिए विद्यालय और खेल के मैदान बने।

पुरानी आदतें बड़ी मुश्किल से जाती हैं। हमारे यहां योग के साथ कृच्छ्र जीवन का विचार बहुत जोरों से बंधा हुआ है। आश्रम में हर प्रकार के खेल-कूद, तैराकी आदि का आरम्भ देख कर कुछ लोग बिदक उठे, कहां योग और कहां यह सब! इस तरह की आपत्तियां उठाने वाले एक शिष्य को श्रीअरविन्द लिखते हैं :

"यह पुराने ढर्रे का आश्रम नहीं है। यहां योग में जीवन का समावेश होता है और एक बार हम जीवन को स्वीकार कर लें तो हम हर ऐसे क्रिया-कलाप को स्थान दे सकते हैं जो आत्मा के कार्यों का विरोधी न हो और जो जीवन के लिए उपयोगी हो। आखिर यह पुराने ढर्रों के आश्रम तभी तो बनने शुरू हुए जब ब्राह्मणों ने जीवन का बहिष्कार शुरू किया और संसार के साथ नाता पूरी तरह तोड़ लिया। तब बौद्ध धर्म सारे देश पर छा गया और आश्रम संघारामों में बदल गये। पुराने आश्रम ठीक ऐसे न थे। वहां शिक्षा-दीक्षा पाने वाले बालक और युवक जीवन-सम्बन्धी बहुतेरी चीजों का प्रशिक्षण पाते थे। पुरुरवस और उर्वशी के बेटे ने एक ऋषि के आश्रम में ही धनुर्विद्या सीखी थी और वहीं इसमें निष्णात बना था। कर्ण शक्तिशाली हथियारों का उपयोग सीखने के लिए एक तपस्वी ब्राह्मण के

पास ही गया था। अतः ऐसा कोई कारण नहीं है कि हमारे जैसे आश्रम में, जहां जीवन और अध्यात्म को एक साथ लाया जा रहा है, वहां खेल-कूद का बहिष्कार किया जाये।" ('श्रीअरविन्द अपने विषय में' पुस्तक से)

आश्रम में शिक्षा, संस्कृति, आचार-व्यवहार, स्वभाव, यानी हर बात में भिन्न प्रकार के और भिन्न स्तरों के लोग मौजूद हैं। जैसा हम पहले कह आये हैं, यह आश्रम माताजी और श्रीअरविन्द की प्रयोगशाला है। इस विषय में स्वयं श्रीअरविन्द कहते हैं :

"यह आवश्यक बल्कि अनिवार्य है कि इस आश्रम में, जो अतिमानस-योग की प्रयोगशाला है, मानवजाति के नाना प्रकार के प्रतिनिधि हों क्योंकि रूपान्तर की समस्या में अनुकूल और प्रतिकूल दोनों प्रकार के तत्त्वों से काम पड़ता है। सच पूछो तो एक ही व्यक्ति में इन दोनों तरह के तत्त्वों का मिश्रण होता है। अगर केवल सात्त्विक और सुसंस्कृत लोग ही योग करने आयें, ऐसे लोग आयें जिनमें प्राणिक कठिनाइयां ज्यादा न हों तो ऐसी अवस्था में पार्थिव प्रकृति में प्राण की कठिनाइयों का सामना करके उन पर विजय न पाने के कारण सारा प्रयास ही असफल रह जायेगा। इसीलिए आश्रम में सभी ओर से सभी स्तरों के लोग आते हैं। इससे भिन्न हो ही नहीं सकता।" (श्रीअरविन्द के एक पत्र से)

और आश्रम में आ कौन सकते हैं यह माताजी से सुनिये :

"जीवन से और लोगों से घृणा और विरक्ति के कारण योग के लिए न आना चाहिये।

कठिनाइयों से भाग जाने के लिए यहां न आना चाहिये।

प्रेम की मधुरता और संरक्षण पाने के लिए भी यहां न आना चाहिये क्योंकि व्यक्ति उचित वृत्ति अपनाये तो भगवान् के प्रेम और संरक्षण का आनन्द उसे हर जगह मिल सकता है।

जब तुम अपने-आपको पूर्णतया भगवान् की सेवा में दे देना चाहो, जब अपने-आपको पूर्णतया भगवान् के कार्य के लिए समर्पित करना चाहो, बदले में कुछ मांगे बिना—अपने-आपको देने और सेवा करने की सम्भावना अपवाद है—अपने-आपको देने और सेवा करने के आनन्द के लिए देना चाहो तो तुम यहां आने के लिए तैयार हो और तुम द्वार को पूरी तरह खुला पाओगे..."

आश्रम में जो भी काम किया जाता है, चाहे वह वेद-पाठ हो या नृत्य और गान, भोजनालय में झाड़ू लगाना हो या माताजी और श्रीअरविन्द की पुस्तकों का प्रकाशन, सबके पीछे एक ही भाव होता है। स्वयं माताजी के शब्दों में, **"शरीर के द्वारा किया गया काम शरीर की सर्वोत्तम प्रार्थना है।"** काम करके हम अपने-आपको भगवान् के प्रति खोलते हैं ताकि वे हमारे अन्दर अपनी चेतना उंडेल सकें। श्रीअरविन्द कहते हैं : "आश्रम का काम मानवजाति या आश्रम के साधक कहलाने वाले उस (मानवजाति) के एक भाग की सेवा के लिए नहीं है। यह काम भगवान् की सेवा के लिए, भगवान् के प्रति आन्तरिक उद्घाटन के क्षेत्र, केवल भगवान् के प्रति समर्पण के लिए और अहंकार तथा सामान्य प्राणिक गतिविधियों के त्याग के लिए, चैत्य-उत्थान, अनासक्ति, आज्ञाकारिता, सभी मानसिक, प्राणिक या सीमित व्यक्तित्व के अन्य स्वाग्रहों के त्याग के लिए है।"

(श्रीअरविन्द के एक पत्र से)

तो आश्रम का काम मामूली बात नहीं है बल्कि एक महान् सौभाग्य है जो हर तरह की प्रगति में सहायक होता है। माताजी कहा करती थीं कि आश्रम में यदि ठीक तरह से काम किया जाये तो उसमें ज्ञान, भक्ति, प्रेम, समर्पण आदि सभी का समावेश हो जाता है।

आश्रम में काम करने वालों को पग-पग पर माताजी और श्रीअरविन्द का पथ-प्रदर्शन मिलता रहता था और भौतिक रूप में न सही, आज भी मिलता है।

एक कार्यकर्ता के हाथ से बरतन बार-बार गिर जाया करते थे और वह यह मानता था कि इसका कारण यह है कि वह कहीं और किसी ऊंची चेतना में रहता है। माताजी ने उसे लिखा :

"तुम जिन भौतिक चीजों का उपयोग करते हो उनकी परवाह न करना निश्चेतना और अज्ञान का लक्षण है।

यदि तुम किन्हीं भौतिक चीजों की भली-भांति देखभाल न कर सको तो तुम्हें उनका उपयोग करने का कोई अधिकार नहीं है।

तुम्हें उन चीजों की देखभाल इसलिए नहीं करनी चाहिये कि तुम उनसे आसक्त हो बल्कि इसलिए कि वे भागवत चेतना के अंश को अभिव्यक्त करती हैं।"

इसी विषय में श्रीअरविन्द अपने एक पत्र में कहते हैं :

"... मुश्किल यह है कि अधिकतर लोगों को भौतिक चीजों को बरतने की शिक्षा नहीं मिली है। (सबसे सरल, कठोर और कामचलाऊ चीजों को छोड़ कर) उनकी रक्षा करने की, उनका पूरा उपयोग करने और उन्हें पूरा जीवन देने की वृत्ति नहीं होती। यह अंशतः अज्ञान के और अनुभव के अभाव के कारण और अंशतः लापरवाही, असंस्कृत, उग्रतापूर्ण और अशोभन व्यवहार के कारण होता है। कइयों में यह भाव भी होता है कि चीजें जल्दी खराब हो जायें तो कोई हर्ज नहीं, उनके स्थान पर नयी आ जायेंगी। एक कार्यकर्ता तो यहां तक कह रहा था, 'तुम क्यों चिन्ता करते हो, यह तुम्हारा पैसा तो नहीं है...' यह सब तमस् है और तमस् का अन्त होता है शक्तियों के विघटन में, छितराव में और भौतिक असफलता में। और अन्त में परिणाम सभी पर आते हैं। सावधान और लापरवाह दोनों पर। हमारा आदर्श सीमित नहीं, विशाल जीवन है, परन्तु यह हो सुव्यवस्थित; अपव्यय, तमस्, अव्यवस्था से मुक्त...।"

इन सब आदर्शों को लेकर आज भी आश्रम श्रीअरविन्द और श्रीमां के मार्गदर्शन में आगे बढ़ रहा है।

'लाल कमल' पुस्तक से —स्व. रवीन्द्रजी

नयी सुबह का स्वागत

नया सूरज नया प्रकाश,
आलोकित हो उठी है सारी धरती, सारा आकाश।
आइये, इस नयी सुबह में
कुछ नया सोचें, नये सपने गढ़ें,
कुछ नया लिखें, कुछ नया पढ़ें।
पीले पड़ने लगे हैं पत्ते जो कल तक थे हरे।
आइये, उनमें कोई नया रंग भरें,
जीवन को दें नया अर्थ,
जाने न पाये यह नया वर्ष व्यर्थ।

—श्री विश्वनाथ

श्रीअरविन्दकृत 'मानव-एकता का आदर्श' पर आधारित :

संक्रमण-काल—कब तक?

जब से मानव सचेतन हुआ है उसने एकता के बारे में सोचा है और आज इक्कीसवीं सदी पर पहुंच कर भी हम उसी मानव एकता की गुहार लगा रहे हैं। मजेदार बात तो यह है कि एकता के वे सभी विचार जो श्रीअरविन्द ने संसार को, कह सकते हैं कि प्रायः एक शताब्दी पूर्व दिये थे, आज भी उतना ही महत्त्व रखते हैं क्योंकि ऐसा लगता है मानों वे जगत् की वर्तमान अवस्था का चित्रण कर रहे हैं। तब फिर क्या मानव ने कोई प्रगति नहीं की? यह बात भी सच नहीं है। प्रकृति हमेशा सर्पिल गति से ऊपर उठती है, घेरे में ऊपर उठने के लिए पहले उसे नीचे उतरना पड़ता है ताकि सर्वांगीण प्रगति हो सके। हम यही आशा और विश्वास रखें कि ऊपर के घेरे में पहुंचने के पहले का यह निचला पड़ाव है। और आशा का दामन हमें कभी छोड़ना नहीं चाहिये क्योंकि अगर सच्ची मानव एकता सम्भव न होती तो प्रकृति कभी इस अभियान को हाथ में न लेती। सालोंसाल पहले श्रीअरविन्द ने कहा था कि सारी कठिनाई इसमें है कि आज हम जिस युग में जी रहे हैं वह संकटों से भरा है—और यह बात आज भी लागू होती है—यह है मशीन का युग जहां परिवर्तन इतनी तेजी से आते हैं कि हम उनके संग-संग चल नहीं पाते। सचमुच यह एक ऐसा संक्रमण-काल है जब बड़े-बड़े परिवर्तन उथल-पुथल मचा रहे हैं। मानव को आगे बढ़ना है, अपने अन्दर की सम्भावनाओं को प्रकट करने के लिए बड़े-बड़े काम कर दिखाने हैं, अतः, असीम आशाओं, महान् आदर्शों से वायुमण्डल ओतप्रोत है, विराट् शक्तियां हमारे सामने विद्यमान हैं। यह पृथ्वी का वह संकटपूर्ण समय है जब पृथ्वी की सभी शक्तियां परिवर्तन और पुनर्निर्माण के तथ्य पर बहुत जोर डाल रही हैं। यही वह समय है जब स्वतन्त्रता, समानता तथा एकता, अर्थात् भविष्य के आदर्शों को उनके सीमित क्षेत्र से निकाल कर आध्यात्मिक या अधिक सरल भाषा में कहें तो उच्च आदर्शवाद के बृहत् क्षेत्र में चरितार्थ करना है, यानी, हमें केवल अपने पड़ोसी, अपने कुटुम्ब, अपने शहर या अपने देश की एकता, समानता और भ्रातृभाव पर जोर

नहीं देना है बल्कि सारे संसार को उस सच्ची एकता के घेरे में बांध देना है। लेकिन इसको चरितार्थ करने में बड़ी-बड़ी बाधाएं मुंह बाये खड़ी हैं और सचमुच सबसे बड़ी बाधाएं बाहरी नहीं बल्कि मनुष्यों के अन्दर ही हैं। मनुष्य अपने स्वभाव को बदलने में जब तक समर्थ न होगा तब तक सच्ची एकता तथा समानता के विचार खोखले ही रहेंगे। अहंकार से घिरा हुआ मानव अपनी प्राणिक और भौतिक रुचियों, स्वार्थों तथा महत्त्वाकांक्षाओं का इतना दास है कि जब वह एकता की बात करता भी है तो उसके पीछे कलह और संघर्ष का एक पूरा संसार खड़ा होता है क्योंकि जब तक उसके निजी सन्तोष का पोषण होता रहता है वह प्रसन्न रहता है, जोर-शोर से समानता, भ्रातृभाव की पुकार करता रहता है, लेकिन जहां उसके अहंकार को ठेस लगी नहीं, उसके स्वार्थों पर किसी दूसरे का हस्तक्षेप हुआ नहीं कि वह फुफकार उठता है। मानव अपनी व्यावहारिक बुद्धि के जोर पर सारे संसार को एक बनाना चाहता है, लेकिन उसकी व्यावहारिक बुद्धि तो आज, या अधिक-से-अधिक कल होने वाली सम्भावनाओं को देख सकती है; परसों के बारे में भी वह अनभिज्ञ रहती है। ऐसी बुद्धि के सहारे अगर वह एकता और भाईचारे की बातें करे तो चीज हास्यास्पद-सी बन जाती है क्योंकि तब व्यक्ति ऊपर-ऊपर से एकता की ढोंगभरी बातें करता है अर्थात्, सुन्दर आदर्शवाद के आवरण के नीचे अपने निजी स्वार्थ को पोसता रहता है। जो बात व्यक्ति पर लागू होती है वही देशों पर भी लागू होती है और यही कारण है कि आत्म-वञ्चना के जूए के नीचे दबा मनुष्य, वह चाहे राजनेता हो या उद्योगपति, मन्त्री हो या समाज-सुधारक या फिर राष्ट्र हों या साम्राज्य, सभी एक दूसरे को ठगते रहते हैं—आज ये ही चीजें हमारे चारों तरफ फैली हुई हैं, हम पर अधिकार जमाये हुए हैं—यही वह सबसे बड़ी आन्तरिक बाधा है जो मनुष्यों के सभी प्रयासों पर पानी फेर देती है। और दूसरी ओर मानव का वैज्ञानिक मन इतना विकसित हो चुका है—प्रत्येक क्षेत्र में नित नयी खोजें इसका जीवन्त उदाहरण हैं—भौतिक विज्ञान ने उसको भौतिक रूप से इतना समृद्ध और सुसम्पन्न बना दिया है कि एक तरफ तो विज्ञान की अत्याधुनिक उन्नति से वह अधिकाधिक ऊंचाइयों को छूने लगा है, लेकिन दूसरी ओर अपने चरित्र में नीचे गिर रहा है और भौतिक विज्ञान की इसी उन्नति ने अब पाश्चात्य देशों की इस

विचारधारा को पकड़ लिया है कि विज्ञान की दिशा में अधिकाधिक बढ़ते-बढ़ते ही अन्त में मनुष्य मुक्ति पा लेगा। आधुनिकता यही राग अलापती है कि ठीक ढंग का यन्त्र ले आओ और सभी काम किये जा सकते हैं! लेकिन भावी मानव किसी अमरीकन कारखाने से गढ़ कर नहीं निकलेगा; वह चाबी से चलने वाला खिलौना नहीं होगा। हमें मानव की आत्मा के साथ विज्ञान को खिलवाड़ नहीं करने देना चाहिये। हर चीज के अन्दर एक गुप्त शक्ति, उसकी आत्मा है। उस पर परदा डाल कर यान्त्रिक तरीके से उसका उद्धार नहीं किया जा सकता। तब तो प्रकृति का सारा अभियान समाप्त हो जायेगा। मनुष्य के हृदय को टटोल कर वहां से गन्दगी हटाने के बजाय अगर हम उसे यान्त्रिक मन के कारखाने में तपा-तपा कर सोना निकालने का प्रयास करेंगे तो वहां से हमें लोहा भी हाथ न लगेगा—आधुनिक वैज्ञानिक और औद्योगिक मन अगर इस तथ्य पर अभी विचार न करेगा तो बाद में बहुत देर हो चुकी होगी। इसीलिए श्रीअरविन्द ने कहा था कि आज वह उस भयंकर संक्रमण-काल से गुजर रहा है जहां एक तरफ आशाओं, सम्भावनाओं का अम्बार लगा है तो दूसरी ओर पतन की खाइयां भी हैं। आज हम उस यान्त्रिक युग में जी रहे हैं जहां विज्ञान का सर्वत्र बोलबाला है। विज्ञान अगर अपने साथ आत्मा को भी लेकर चले तो हम प्रगति के उस सर्पिल चक्र का निचला घेरा पार कर ऊपर के उस स्तर पर आ जायेंगे जहां से एक नये आयाम में प्रवेश कर सकेंगे जो अतिमानव का प्रवेश-द्वार होगा। लेकिन तब तक मानव को संक्रमण-काल की उस भट्टी में तपना ही होगा ताकि वह खरा कुन्दन बन कर निखर आये।

—वन्दना

यहां पर हमारा कोई धर्म नहीं है। हम धर्म के स्थान पर आध्यात्मिक जीवन को रखते हैं जो एक ही साथ अधिक सच्चा, अधिक गहरा और अधिक ऊंचा है, यानी, भगवान् के अधिक निकट है। क्योंकि भगवान् हर चीज में हैं, परन्तु हम उनके बारे में सचेतन नहीं हैं। यही वह विशाल प्रगति है जो मनुष्य को करनी चाहिये।

१९ मार्च १९७३ *—श्रीमां*

उनकी कृपा बरसेगी अवश्य...

जीवनयात्रा में समस्त भय, संकट और विपदा का सामना करने के लिए कवच के रूप में तुम्हारे पास केवल दो ही चीजों का होना आवश्यक है, पहली है दिव्य मां की कृपा और दूसरी है एक ऐसी आन्तरिक स्थिति अपनाना जो श्रद्धा, निष्कपटता और समर्पण से भरपूर हो। अपनी श्रद्धा को पवित्र, निश्छल तथा पूर्ण बनाओ। मानसिक तथा प्राणिक सत्ता की ऐसी अहंकारमयी श्रद्धा जो आकांक्षा, अभिमान, दम्भ, मानसिक अक्खड़ता, प्राणिक स्वैरता, व्यक्तिगत मांग, निम्न प्रकृति की तुच्छ कामनाओं की पूर्ति में लगी रहती है, वह निम्न प्रकार की तथा धुएं से भरी श्रद्धा होती है जो ऊपर स्वर्ग की ओर प्रज्वलित नहीं हो सकती। अपने जीवन को इस रूप में देखो कि वह तुम्हें केवल दिव्य कर्म करने और दिव्य अभिव्यक्ति में सहायता देने के लिए मिला है। केवल भागवत चेतना की पवित्रता, शक्ति, प्रकाश, विस्तार, अचञ्चलता तथा आनन्द की कामना करो और तुम्हारे अन्दर यह आग्रह हो कि ये भागवत चीजें तुम्हारे मन, प्राण और शरीर को रूपान्तरित और पूर्ण कर दें। मांगो केवल भागवत, आध्यात्मिक तथा अतिमानसिक सत्य को; यह मांगो कि पृथ्वी पर, स्वयं तुम्हारे अन्दर और उन सभी में उस परम सत्य की उपलब्धि हो जो भागवत कार्य के लिए चुने गये हैं, और यह मांगो कि इस सत्य के प्रकट होने के लिए पृथ्वी पर आवश्यक परिस्थितियां पैदा हो जायें और यह सत्य सभी विरोधी शक्तियों पर विजय पा ले।

तुम्हारी निष्कपटता और समर्पण सच्चे तथा पूर्ण हों। अपने-आपको निःशेष रूप से, बिना मांग, बिना शर्त, बिना संकोच के दे डालो ताकि तुम्हारे अन्दर का सब कुछ उन दिव्य मां का हो जाये, अपने अहं या अन्य किसी शक्ति के लिए कुछ भी बचा कर न रखो।

तुम्हारी श्रद्धा, निष्कपटता तथा समर्पण जितने अधिक पूर्ण होंगे कृपा तथा सुरक्षा भी उसी हद तक तुम्हारे साथ रहेंगी। और जब दिव्य मां की कृपा तथा सुरक्षा तुम्हारे साथ हों तो कौन है जो तुम्हारा स्पर्श कर सके या कौन है जिससे तुम भयभीत होओ? उनकी कृपा तथा सुरक्षा का जरा-सा अंश भी तुम्हें सभी मुश्किलों, बाधाओं तथा खतरों से पार ले जायेगा;

उनकी कृपा तथा सुरक्षा की पूर्ण उपस्थिति से घिरे हुए तुम अपने पथ पर निरापद आगे बढ़ सकते हो क्योंकि वह पथ मां का है, वह सभी संकटों से अछूता है, सभी प्रतिकूलताओं और विद्वेषों के परे है—वे विद्वेष चाहे जितने शक्तिशाली क्यों न हों, चाहे वे इस जगत् के हों या अदृश्य जगतों के। मां का स्पर्श कठिनाइयों को सुअवसरों में, असफलता को सफलता में और दुर्बलता को अडिग बल में बदल सकता है। क्योंकि दिव्य जननी की कृपा परम प्रभु की अनुमति है और आज या कल उसका फल निश्चित है। वह कृपा बरसेगी यह पूर्वनिर्दिष्ट, अवश्यम्भावी और अप्रतिरोध्य तथ्य है।

—श्रीअरविन्द

तुम्हारे लिए यह बिलकुल सम्भव है कि तुम घर पर और अपने काम के बीच रह कर साधना करते रहो—बहुत-से लोग ऐसा करते हैं। आरम्भ में बस आवश्यकता यह है कि जितना अधिक सम्भव हो उतना माताजी का स्मरण करते रहो, प्रत्येक दिन कुछ समय हृदय में उनका ध्यान करो, अगर सम्भव हो तो भगवती माता के रूप में उनका चिन्तन करो, अपने अन्दर उनको अनुभव करने की अभीप्सा करो, अपने कर्मों को उन्हें समर्पित करो और यह प्रार्थना करो कि वे आन्तरिक रूप से तुम्हें मार्ग दिखायें और तुम्हें संभाले रखें।

यह आरम्भिक अवस्था है और बहुधा इसमें बहुत समय लग जाता है, पर यदि कोई सच्चाई और लगन के साथ इस अवस्था में से गुजरता है तो मनोवृत्ति कुछ-कुछ बदलना आरम्भ कर देती है और साधक में एक नयी चेतना खुल जाती है जो अन्तर में श्रीमां की उपस्थिति के बारे में, प्रकृति में और जीवन में होने वाली उनकी क्रिया के बारे में, अथवा सिद्धि का दरवाजा खोल देने वाली किसी अन्य आध्यात्मिक अनुभूति के बारे में अधिकाधिक सचेतन होना आरम्भ कर देती है।

—श्रीअरविन्द

जगत् की वर्तमान अवस्था से निकलने का उपाय

देखो, जगत् की वर्तमान अवस्था में परिस्थितियां हमेशा कठिन रही हैं। सारा संसार कलह और संघर्ष की स्थिति में है—अभिव्यक्त होने की इच्छुक सत्य और प्रकाश की शक्तियों और उन सबके बीच संघर्ष है जो बदलना नहीं चाहता, जो ऐसे भूतकाल का प्रतिनिधि है जो स्थिर और कठोर है, जो जाने से इन्कार करता है। स्वभावतः हर व्यक्ति अपनी कठिनाइयों का अनुभव करता है और उसे उन्हीं बाधाओं का सामना करना पड़ता है।

तुम्हारे लिए बस एक ही रास्ता है। वह है पूर्ण, समग्र और बिना शर्त के समर्पण। इससे मेरा मतलब है, न केवल अपनी क्रियाओं, कर्म, महत्त्वाकांक्षाओं को छोड़ देना बल्कि अपने सभी भावों को भी छोड़ देना, यानी तुम जो करते हो, तुम जो हो वह सब ऐकान्तिक रूप से भगवान् के लिए हो। तब तुम अपने-आपको मानव प्रतिक्रियाओं के घेरे से ऊपर अनुभव करते हो—केवल उनसे ऊपर ही नहीं बल्कि भागवत कृपा की दीवार द्वारा उनसे सुरक्षित रहते हो। एक बार तुम्हारे अन्दर कामनाएं न रहें, आसक्तियां न रहें, एक बार तुम मानव सत्ताओं से—चाहे वे कोई भी क्यों न हों—पारितोषिक पाने की समस्त आवश्यकताओं को त्याग दो—यह जानो कि एकमात्र पाने-योग्य पारितोषिक वह है जो परम प्रभु से आता है और जो कभी निराश नहीं करता—एक बार तुम सभी बाहरी सत्ताओं और चीजों की आसक्ति छोड़ दो, तो तुम तुरन्त अपने हृदय में उस परम उपस्थिति, उस परम शक्ति, उस परम कृपा का अनुभव करते हो जो हमेशा तुम्हारे साथ होती है।

कोई और उपचार नहीं है। बिना अपवाद **हर एक के लिए** यही एकमात्र उपचार है। वे सभी जो पीड़ित हैं, उनसे यही एक बात कहनी चाहिये: समस्त दुःख इस बात का सूचक है कि समर्पण समग्र नहीं है। तो जब तुम अपने अन्दर इस तरह के "प्रहार" का अनुभव करो तो यह कहने की बजाय, "ओह, यह खराब है" या "यह कठिन परिस्थिति है", तुम यह कहो, "मेरा समर्पण पूर्ण नहीं है।" तो ठीक है। और फिर तुम उस परम कृपा का अनुभव करोगे जो तुम्हारी सहायता करती है, जो तुम्हारा पथ-प्रदर्शन करती है और तुम आगे बढ़ते चले जाते हो। और फिर एक दिन तुम उस

शान्ति में उभर आते हो जिसे कुछ भी विचलित नहीं कर सकता। तुम सभी प्रतिरोधी शक्तियों, प्रतिरोधी गतिविधियों, प्रहारों, गलतफहमियों, दुर्भावनाओं का उत्तर उसी मुस्कान के साथ देते हो जो भागवत कृपा में पूर्ण विश्वास से आती है। और बचने का यही **एकमात्र** तरीका है, कोई दूसरा नहीं है।

यह जगत् संघर्ष, दुःख-दर्द, कठिनाइयों, तनावों का जगत् है; यह इन्हीं से बना है। यह अभी तक बदला नहीं है, बदलने में कुछ समय लगेगा और हर एक के लिए बाहर निकलने की सम्भावना है। अगर तुम भागवत कृपा की उपस्थिति का सहारा लो, तो यही **एकमात्र** उपाय है। मैं दो-तीन दिनों से निरन्तर तुमसे यही कहती आ रही हूं।

तो अब?

क्या किया जाये?

क्या? तुम्हारे काम के बारे में कुछ नहीं कहना है। तुम उसे बिलकुल अच्छी तरह से, ठीक जैसा करना चाहिये, कर रहे हो; यह ठीक है। तुम्हारा काम बिलकुल ठीक है।

मैं यही पूछना चाहता था: यह काम किसी भी तरह आवश्यक है या नहीं? मैं इसे क्यों करता चला जाऊं?

बहुत अच्छा है, इसे करते चलो। तुम इसे बिलकुल अच्छी तरह कर रहे हो। मानव सराहना की आशा मत करो—क्योंकि मनुष्य यह नहीं जानते कि किस आधार पर चीजों की सराहना की जाये, और इससे भी बढ़ कर, जब कोई ऐसी चीज होती है जो उनसे ज्यादा ऊंची हो तो वे उसे पसन्द नहीं करते।

लेकिन यह बल कहां से पाऊं?

अपने अन्दर से। भागवत उपस्थिति तुम्हारे अन्दर है। वह तुम्हारे अन्दर है। तुम उसे बाहर ढूंढ़ते हो; अन्दर देखो। वह तुम्हारे अन्दर है। भागवत

उपस्थिति वहां मौजूद है। तुम बल पाने के लिए औरों की प्रशंसा चाहते हो, वह तुम्हें कभी न मिलेगी। बल तुम्हारे अन्दर है। अगर तुम चाहो तो उसकी अभीप्सा कर सकते हो जो तुम्हें परम लक्ष्य, परम प्रकाश, परम ज्ञान, परम प्रेम प्रतीत हो। लेकिन वह तुम्हारे अन्दर है—वरना तुम कभी उसके साथ सम्पर्क में न आ पाते। अगर तुम अपने अन्दर पर्याप्त गहरे जाओ तो वहां तुम्हें वह उपस्थिति एक ज्वाला की तरह मिलेगी जो हमेशा सीधी ऊपर की ओर जलती है।

और यह मत सोचो कि यह करना बहुत कठिन है। यह कठिन इसलिए है क्योंकि दृष्टि हमेशा बाहर की ओर मुड़ी होती है और तुम परम उपस्थिति का अनुभव नहीं करते। लेकिन हर क्षण यह जानने के लिए कि क्या करना चाहिये, कैसे करना चाहिये, बाहर सहारा ढूंढ़ने की जगह अगर तुम अन्दर, भागवत ज्ञान पर एकाग्र होओ और प्रार्थना करो, और अगर तुम स्वयं जो कुछ हो उसे दे दो, जो कुछ करो पूर्णता पाने के लिए करो, तो तुम अनुभव करोगे कि सहारा मौजूद है, हमेशा पथ-प्रदर्शन कर रहा है, रास्ता दिखा रहा है। और अगर कोई समस्या आये तो उससे युद्ध करने की इच्छा के स्थान पर तुम उसे परम प्रज्ञा के हवाले कर दो—कि वह सभी दुर्भावनाओं, सभी गलतफ़हमियों, सभी बुरी प्रतिक्रियाओं के साथ जो उचित है वह करे। अगर तुम पूरी तरह से समर्पण कर दो तो फिर उसके साथ तुम्हारा सम्बन्ध नहीं रह जाता; वह परम प्रभु की चीज हो जाती है जो उसका भार ले लेते हैं, जो इसके सम्बन्ध में क्या करना चाहिये यह किसी भी व्यक्ति से ज्यादा अच्छी तरह जानते हैं। यही एकमात्र तरीका है, यही एकमात्र तरीका है। लो मेरे बच्चे।

एक चीज है कि मैं वहां जो कुछ करता हूं, वह मेरे अपने लोगों को पसन्द नहीं आता है।

तुम्हारे अपने लोग मिले-जुले हैं, जैसा कि हर एक है।

लेकिन मेरा अनुभव इतना दृढ़ है—न केवल दृढ़, बल्कि वह इतना स्पष्ट है जैसे दिन की रोशनी हो, मानों मैं आपकी उपस्थिति में

बैठा हूं—कि मैं कुछ भी अपने-आप नहीं करता। इतने वर्षों का मेरे लिए यह इतना महान् सुस्पष्ट अनुभव है। मेरे द्वारा जो कुछ किया जा रहा है वह मेरे द्वारा बिलकुल नहीं, किसी दिव्य शक्ति के द्वारा किया जा रहा है। और वह कार्य करवा लेती है, लेकिन फिर...

क्या! तुम आशा करते हो कि दुनिया यह समझेगी?

जी नहीं। वे यह न समझ पायें, मैं इसके लिए कोई श्रेय नहीं चाहता, लेकिन, बाधाएं और...

अगर तुम यह मानते हो कि मैं समझ रही हूं और जानती हूं, तो तुम्हें मेरा पूरा सहारा प्राप्त है। मैंने तुमसे कभी नहीं कहा कि तुम गलत चीज कर रहे हो, कहा है क्या? अब तुम्हें हमेशा के लिए यह समझ लेना चाहिये कि जब तक लोग सच्चे योगी न हों, अपने अहं से मुक्त न हों, भगवान् को पूरी तरह समर्पित न हों तब तक वे समझ नहीं सकते। भला कैसे समझ सकते हैं वे? वे केवल बाहरी आंखों और बाहरी ज्ञान द्वारा देखते हैं, वे बाहरी चीजों और बाहरी रूप-रंग को देखते हैं। वे अन्दर की चीज को नहीं देखते। जब हम बाहर से, यानी मनुष्यों से सराहना पाने की आशा छोड़ देते हैं तो हमारे पास शिकायत करने का कोई कारण नहीं रह जाता। वे सराहना करें तो उनके लिए बहुत अच्छा है। वे सराहना न करें, कोई हर्ज नहीं। यह उनका निजी दृष्टिकोण है। हम उन्हें खुश करने के लिए नहीं करते, हम चीजें इसलिए करते हैं क्योंकि हम यह अनुभव करते हैं कि इसे करना चाहिये।

मैंने कभी सराहना की आशा नहीं की मां!

शायद चीजें तुम्हें यह स्थिति अपनाने के लिए बाधित करने को आ रही हैं—क्योंकि यही मुक्ति है, यही सच्ची मुक्ति है।

जी, अहंकार से नहीं, बल्कि स्वभाव से ही मैं साधु हूं। मुझे बिलकुल

किसी चीज की आवश्यकता नहीं है।

यह ठीक है, लेकिन तुम्हें अपने परिवार की सराहना की आवश्यकता भी नहीं होनी चाहिये।

अपनी सभी असफलताओं और कमजोरियों के होते हुए, मुझे किसी चीज की आवश्यकता नहीं, मुझे किसी तरह की सराहना की जरूरत नहीं है।

तब तुम दुःख नहीं पा सकते। क्योंकि एकमात्र वस्तु जिसकी तुम्हें आवश्यकता है वह है भागवत सहारा, और वह तुम्हें प्राप्त है। तब तुम्हें दुःख नहीं हो सकता।

लेकिन मैं बहुत अधिक दुःख झेल रहा हूं।

हां, तुम्हारी सत्ता के अन्दर संघर्ष है। तुम्हारी चेतना का एक भाग जानता है, लेकिन फिर भी एक भाग है जो परिस्थितियों का दास है।

(मौन)

शायद यह सब तुम्हारे ऊपर परम और पूर्ण मुक्ति के लिए आ रहा है। और अगर तुम इसे भागवत कृपा की अभिव्यक्ति के रूप में लो तो तुम परिणाम देखोगे। ऐसी शान्ति, ऐसी शान्ति मिलेगी जिसे कुछ भी विचलित नहीं कर सकता, पूर्ण समचित्तता और ऐसा बल प्राप्त होगा जो कभी धोखा नहीं देता।

(लम्बा मौन)

आज इसे नये जन्म के रूप में लो। नया जीवन जो शुरू हो रहा है।
११ मई १९६७ —श्रीमां

हमारे शिक्षा-केन्द्र का उद्देश्य

मधुर मां,

हमारे 'शिक्षा-केन्द्र' के विद्यार्थियों को 'डिप्लोमा' या 'सर्टिफ़िकेट' क्यों नहीं दिये जाते?

लगभग एक शताब्दी से मानवजाति एक रोग से पीड़ित है जो अधिकाधिक बढ़ता ही दीख रहा है और आज वह अपनी चरम अवस्था पर आ पहुंचा है; इसे हम "उपयोगितावाद" कहते हैं। ऐसा लगता है कि चीजों और मनुष्यों को, परिस्थितियों और कर्म को अनन्य रूप से उसी एक दृष्टिकोण से विचारा और सराहा जाता है। जिसकी कोई उपयोगिता नहीं उसका कोई मोल नहीं। यह ठीक है कि जो उपयोगी है वह निरुपयोगी से बेहतर है। लेकिन पहले यह समझ लेना चाहिये कि मनुष्य किसे उपयोगी मानता है—उपयोगी किसके लिए, किसके प्रति, किसलिए?

और, उत्तरोत्तर, वे जातियां जो अपने को सभ्य समझती हैं उसी चीज को उपयोगी कहती हैं जो धन ला सके, कमा सके या पैदा कर सके। सबका निर्णय और मूल्यांकन उसी एक आर्थिक दृष्टिकोण से किया जाता है। मैं इसे ही उपयोगितावाद कहती हूं। और यह रोग बहुत ही संक्रामक है, क्योंकि बच्चे भी इससे अछूते नहीं रहते।

उस उम्र में जब कि सुन्दरता, भव्यता और पूर्णता के सपने संजोये जाने चाहियें, ऐसे सपने जो शायद सामान्य अर्थों से कहीं अधिक उदात्त होते हैं, पर जो निश्चय ही कुण्ठित सामान्य बुद्धि से उच्चतर हैं, आजकल बच्चे पैसे के सपने देखते हैं और उसे कमाने के साधनों के बारे में चिन्तातुर रहते हैं।

इसी तरह जब वे अपनी पढ़ाई के बारे में सोचते हैं तो उस सब पर विचार करते हैं जो आगे चल कर उनके लिए उपयोगी हो सके ताकि जब वे बड़े हों तो बहुत-सा धन कमा सकें।

और परीक्षाओं में सफल होने के लिए तैयारी करना उनके लिए सबसे महत्त्वपूर्ण बन गया है, क्योंकि 'डिप्लोमा', 'सर्टिफ़िकेट' और उपाधि ही उन्हें उच्च पद प्राप्त करा सकते हैं और इनकी सहायता से वे धन भी खूब कमा सकते हैं।

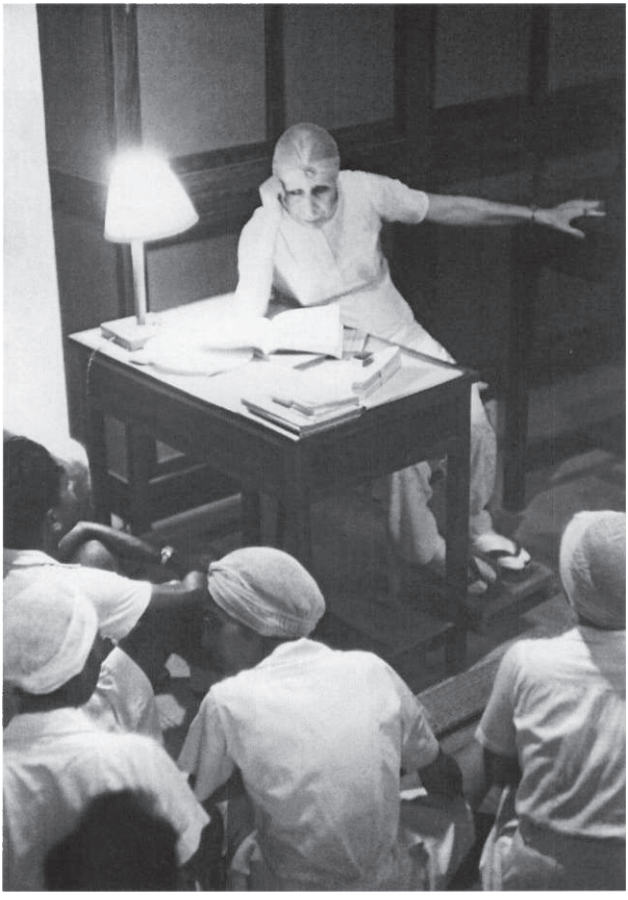

क्रीड़ांगण में कक्षा लेती हुई श्रीमां

उनके लिए पढ़ाई का न कोई और उद्देश्य है, न महत्त्व।

ज्ञान के लिए सीखना, प्रकृति और जीवन के रहस्यों को जानने के लिए पढ़ना, चेतना को विकसित करने के लिए अपने-आपको शिक्षित करना, आत्म-प्रभुत्व पाने के लिए स्वयं को अनुशासित करना, अपनी दुर्बलताओं, अक्षमताओं और अज्ञानताओं को अतिक्रम करने के लिए पढ़ना, जीवन में अधिक उच्च, विशाल, उदार और सच्चे उद्देश्य की ओर बढ़ने के लिए अपने-आपको तैयार करना... यह तो वे सोच ही नहीं सकते, इसे तो वे कपोल-कल्पना ही समझते हैं। बस, एक ही चीज महत्त्वपूर्ण है—व्यावहारिक होना, धन कमाना सीखना और उसके लिए स्वयं को तैयार करना।

आश्रम का यह 'शिक्षा-केन्द्र' उन बच्चों के लिए उपयुक्त स्थान नहीं है जो इस रोग के शिकार हैं। और उनके आगे इस बात को अच्छी तरह प्रमाणित कर देने के लिए ही हम उन्हें किसी प्रकार की परीक्षा के लिए या किसी सरकारी प्रतियोगिता के लिए तैयार नहीं करते और न ही उन्हें कोई 'डिप्लोमा' या उपाधि देते हैं जो बाहरी दुनिया में उनके काम आ सके।

हम यहां केवल उन्हीं बच्चों को चाहते हैं जो एक उच्चतर और श्रेष्ठतर जीवन की अभीप्सा करते हैं, जिनमें ज्ञान और पूर्णता की प्यास है, जो एक पूर्णतर सच्चे भविष्य की ओर उत्कटता से निहारते हैं।

बाकी सबके लिए दुनिया काफी बड़ी है।

१७ जुलाई १९६० —'श्रीमातृवाणी', खण्ड १२, पृ. ३२३-२४

दिन बीत जाते हैं, सप्ताह बीत जाते हैं, महीने बीत जाते हैं, साल बीत जाते हैं और काल अतीत में विलुप्त हो जाता है। और बाद में, जब वे बड़े हो जाते हैं, जिन्हें अब बालक रहने का परम सौभाग्य प्राप्त नहीं रहता, तो उन्हें इस बात का खेद होता है कि उन्होंने अपना समय खो दिया, वे उसका उपयोग जीना जानने के लिए जो चीजें आवश्यक हैं उन सबको सीखने में कर सकते थे।

मार्च १९६१ —श्रीमां

ढीलेपन से सावधान

(आश्रम के वरिष्ठ साधक पुराणीजी ने योग के अभीप्सुओं को सरल भाषा में इस योग का परिचय देने, उस पर अमल करने के लिए बहुत ही सुन्दर-सरल-सुग्राह्य भाषा में कई चिट्ठियां लिखीं; उनमें से एक यह रही—सं.)

मेरी सलाह है कि तुम फिर एक बार ओनामासी से शुरू करो। अपना हर काम भगवान् की सेवा के रूप में, भगवान् के लिए—यज्ञ के रूप में—करना सीखो। अपने अन्दर देखो और अपनी कमजोरियों पर नजर डालो। उन्हें सावधानी से देखो और अपने अन्दर से दूर करने की कोशिश करो और इसमें भगवान् की सहायता मांगो। पवित्र और उन्नत जीवन बिताने की इच्छा रखने वालों का संग करो। बुरे विचारों और वासनाओं के साथ लड़ाई में सच्ची वीरता दिखाओ—यह काम बहुत सरल दीखता है पर इतना सरल है नहीं।

*

हमलोग आखिर मनुष्य हैं। मनुष्य का स्वभाव बहुत-सी कमियों, कमजोरियों और ओछेपन से भरा है। उसे पूर्ण बनाने के लिए, उसमें सच्ची सामर्थ्य और दिव्यता लाने के लिए हमेशा जागते रहना, सावधान रहना और भगीरथ प्रयत्न करना बहुत जरूरी है। अगर हम हमेशा जागरूक न रहें तो नीचे गिरना शुरू हो जाता है। जो आदमी ऊपर उठने की पूरी कोशिश नहीं करता वह नीचे की ओर खिसकता जाता है, इसलिए मेरा आग्रह है कि अपने जीवन में ऊपर उठाने वाली लौ लगाओ और उसे हमेशा जाग्रत् रखो। मन में ऊंचे आदर्श रखना काफी नहीं है, उन्हें अपने जीवन में उतारने के लिए पूरी कोशिश करो। तुम्हें अपनी भूलों, कमजोरियों और दोषों के कारण असन्तोष रहता हो तो यह शुभ लक्षण है, इससे निराश न होओ बल्कि यह न हो तो अपना दुर्भाग्य मानो और भगवान् से प्रार्थना करो कि तुम्हें दिव्य असन्तोष दें जो तुम्हारी सभी कमजोरियों को दूर भगाने के लिए उत्सुक हो। अगर तुम्हारे अन्दर ऐसे विचार उठते हों जो तुमसे

कहा करते हों, 'अरे, हमसे क्या होगा?' 'बस हो चुका, अब रहने भी दो,' 'अरे, हम जैसों से क्या होगा,' 'नहीं, हमें इस सबमें नहीं पड़ना,' 'अरे, खाओ-पियो, मौज करो, दो दिन की जिन्दगी है'—तो जरूर दुःखी होने की बात है। तब तुम्हें भगवान् के आगे रोना चाहिये और कहना चाहिये कि हमारे दिल में भी ऊंचे आदर्श की प्यास पैदा करो, हमारे अन्दर भी दिव्य अग्नि सुलगाओ।

हां, मेरे भाइयो, अपने अन्दर यज्ञ की अग्नि प्रकट करो और इस अग्नि में अपना सर्वस्व आहुति-रूप में डालने की कोशिश करो। याद रखो, स्वयं भगवान् तुम्हारे यज्ञ के अधिष्ठाता हैं और तुम्हें अपने जीवन में दिव्यता प्रकट करनी है। दो पैरों पर चलने वाले पशु का जीवन मत बिताओ, अपनी पशु-वृत्तियों से सावधान रहो।

जिन्हें अपनी कमजोरियों का कुछ भान है उन्हें अपनी कमजोरियों से घबराना न चाहिये बल्कि अपने अन्दर बैठे हुए दुश्मन को मार भगाने के लिए कमर कस कर तैयार होना चाहिये। तुम्हें दूसरों के अन्दर कमजोरियां दिखायी दें तो उन्हें नीची निगाह से न देखो। यह न मान बैठना कि वे लोग बुरे हैं और तुम अच्छे हो। ये कमजोरियां मानव-स्वभाव की हैं, हममें से हर एक के अन्दर आती-जाती रहती हैं। कई बार शूर्पणखा की तरह बड़े मोहक रूप धर कर आती हैं। कभी यह न सोचना कि मैं अच्छा हूं, पवित्र हूं। स्वार्थ, अभिमान, ईर्ष्या, लोभ, वासना वगैरह बहुत सुन्दर और आकर्षक रूप में आकर तुम्हें छल सकते हैं। इसलिए हमेशा सावधान रहने की जरूरत है।

मन थोड़ा-सा प्रयत्न करके ढीला पड़ जाया करता है, इस प्रकार के ढीलेपन से भी सावधान।

—स्नेहाधीन
पुराणी

लगन, श्रमशीलता, अध्यवसाय और तत्परता—ये चार मित्र जिसके भी होंगे उसका प्रगति-पथ पर तेजी से अग्रसर होना निश्चित है।

पथ पर

अतिमानसिक योग एक ही साथ भगवान् की ओर आरोहण और सशरीर प्रकृति में देव का अवरोहण है। आरोहण केवल सबको इकट्ठा करके ऊर्ध्वमुखी अन्तरात्मा, मन, प्राण और शरीर की संकेन्द्रित अभीप्सा द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। अवरोहण अनन्त और शाश्वत भगवान् की ओर समस्त सत्ता की पुकार के कारण ही हो सकता है। अगर यह पुकार और यह अभीप्सा हों या अगर किसी तरीके से उन्हें पैदा किया जा सके और वे सतत बढ़ती रहें और सारी प्रकृति को पकड़ लें तब, केवल तभी अतिमानसिक उन्नयन और रूपान्तर सम्भव हो सकता है।

पुकार और अभीप्सा केवल पहली शर्तें हैं, उनके साथ उनकी प्रभावकारी तीव्रता द्वारा लाया गया भगवान् के प्रति समस्त सत्ता का उद्घाटन और पूर्ण समर्पण होना चाहिये। यह उद्घाटन सभी स्तरों पर, सभी भागों में प्रकृति का, बिना किसी सीमा के अपने अन्दर महत्तर दिव्य चेतना को ग्रहण करने के लिए पूरी तरह खोल देना है। वह चेतना अब भी इस मर्त्य, अर्ध-चेतन सत्ता के ऊपर और पीछे उपस्थित है और इसे चारों ओर से घेरे हुए है। ग्रहण करने में धारण करने की कोई अक्षमता न होनी चाहिये, सारे तन्त्र में—मन, प्राण, स्नायु या शरीर में—कोई भी चीज उसके रूपान्तरकारी दबाव से टूटे नहीं। होनी चाहियें अन्तहीन ग्रहणशीलता, सदा अधिकाधिक शक्तिशाली और अधिकाधिक आग्रही, भागवत शक्ति की क्रिया को सह सकने वाली, सदा बढ़ती हुई क्षमता। अन्यथा कोई भी महान् और स्थायी चीज नहीं हो सकती; योग की प्रक्रिया का अन्त स्वास्थ्य-भंग या जड़ता-भरी रुकावट, बेतुके या अनर्थकारी रोध में होगा, उसमें प्रक्रिया के असफल न होने के लिए यह जरूरी है कि वह पूर्ण और सर्वांगीण हो।

लेकिन चूंकि किसी भी मानव तन्त्र में यह अन्तहीन ग्रहणशीलता और अक्षय क्षमता नहीं है, इसलिए अतिमानसिक योग केवल तभी सफल हो सकता है जब उतरती हुई भागवत शक्ति व्यक्तिगत सामर्थ्य को बढ़ाती चले और ग्रहण करने वाले बल को प्रकृति में काम करने के लिए उतरने वाली शक्ति के बराबर बनाती चले। यह तभी सम्भव है जब हमारी ओर से सत्ता का भगवान् के हाथों में उत्तरोत्तर समर्पण होता चले। पूरी-पूरी और अक्षय

स्वीकृति, और कार्य के लिए जो कुछ जरूरी हो उसे हमारे अन्दर भागवत शक्ति को करने देने की साहसपूर्ण तत्परता होनी चाहिये।

मनुष्य अपने ही प्रयास से अपने-आपको मनुष्य से अधिक नहीं बना सकता। मानसिक सत्ता सहायता के बिना अपने-आपको अतिमानसिक आत्मा में नहीं बदल सकती। भागवत प्रकृति का अवतरण ही मानव पात्र को भागवत बना सकता है।

क्योंकि हमारे मन, प्राण और शरीर की शक्तियां अपनी सीमाओं के साथ बंधी हैं और वे चाहे जितनी ऊंची उठें, चाहे जितनी विस्तृत हो जायें, वे अपनी स्वाभाविक अन्तिम सीमाओं से ऊपर या विस्तार में उन सीमाओं के परे नहीं फैल सकतीं। फिर भी, मानसिक मनुष्य उसकी ओर खुल सकता है जो उसके परे है और अतिमानसिक 'ज्योति', 'सत्य' और 'शक्ति' को अपने अन्दर काम करने के लिए और वह करने के लिए बुला सकता है जो मन नहीं कर सकता। अगर मन प्रयास से वह नहीं बन सकता जो मन के परे है, तो अतिमानस उतर कर मन को अपने द्रव्य में बदल सकता है। अगर मनुष्य की विवेकशील स्वीकृति और जागरूक समर्पण अतिमानसिक शक्ति को अपनी निजी गभीर और सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि और लचीली सामर्थ्य के अनुसार काम करने दें तो वह धीरे-धीरे या तेजी से हमारी पतित और अपूर्ण प्रकृति में भागवत रूपान्तर ला सकती है।

यह अवतरण, यह क्रिया भी अनर्थकारी पतन और संकट की सम्भावना से खाली नहीं है। अगर मानव मन या प्राणिक कामना नीचे उतरती हुई शक्ति को पकड़ ले और उसे अपने सीमित या भूलभरे विचारों या त्रुटिपूर्ण विचारों और अहंकारी आवेगों के अनुसार काम में लाने की कोशिश करे—इस प्रकार की चीजें कुछ हद तक अनिवार्य होती हैं जब तक कि यह निम्नतर मर्त्य कुछ हद तक उस महत्तर अमर प्रकृति के तरीके न सीख ले—तब तक ठोकरों, विचलनों, कठिन और अलंघ्य दीखने वाली बाधाओं और घावों और दुःख-दर्द से बचा नहीं जा सकता और मृत्यु और नितान्त पतन भी असम्भव नहीं हैं। जब मन, प्राण और शरीर भगवान् के प्रति सचेतन सर्वांगीण समर्पण सीख लें केवल तभी योग-मार्ग सरल, सीधा, तेज और सुरक्षित हो सकता है।

और यह समर्पण और उद्घाटन केवल भगवान् के प्रति होना चाहिये, और किसी के प्रति नहीं। क्योंकि अंधेरे मन या अशुद्ध प्राण-शक्ति के लिए

अदिव्य और विरोधी शक्तियों के आगे समर्पण करना और उन्हें भूल से भगवान् मान लेना भी सम्भव है। इससे बढ़ कर और कोई अनर्थकारी भूल नहीं हो सकती। इसलिए हमारा समर्पण समस्त प्रभावों या किसी प्रभाव के प्रति अन्धी, तामसिक निष्क्रियता न होकर, निष्कपट, सच्चा, सचेतन, जागरूक, एकमेव और उच्चतम के प्रति ही होना चाहिये।

दिव्य, अनन्त जननी के प्रति आत्म-समर्पण चाहे जितना कठिन हो, वही हमारा एकमात्र प्रभावकारी उपाय और एकमात्र स्थायी आश्रय है। उनके प्रति आत्म-समर्पण का अर्थ है कि हमारी प्रकृति उनके हाथों का यन्त्र हो, अन्तरात्मा मां की बांहों में एक बालक हो। —श्रीअरविन्द

श्रीअरविन्द का एक पत्रांश

जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूं कि यदि तुम पूर्णता प्राप्त करना चाहो तो सभी बातों में, चाहे वह कार्य और अध्ययन हो या योग में आन्तरिक प्रगति हो, यही एक चीज जरूरी है—मन की शान्ति, शक्ति के प्रति सचेतनता एवं उसके प्रति उद्घाटन और उसे अपने अन्दर कार्य करने देना। पूर्णता-प्राप्ति का उद्देश्य तो ठीक है, पर मन की अस्थिरता इसे पाने का तरीका नहीं है। अपनी अपूर्णताओं पर अधिक ध्यान देना और सदा यह सोचते रहना कि कैसे करूं या क्या करूं यह भी ठीक तरीका नहीं है। शान्त बने रहो, अपने-आपको उद्घाटित करो, चेतना को बढ़ने दो—शक्ति का आह्वान करो कि वह अपना कार्य कर सके। ज्यों-ज्यों चेतना बढ़ती जाती है और शक्ति कार्य करने लगती है तो क्या अपूर्ण है केवल इसी से तुम सचेत नहीं हो जाते बल्कि उस क्रिया से भी सचेत हो जाते हो जो तुम्हें (एकदम तो नहीं, पर क्रमशः) इन अपूर्णताओं से बाहर निकाल लायेगी और तब तुम्हें बस, इस क्रिया का ही अनुसरण करना होता है।

यदि लम्बे काम के द्वारा या हड़बड़ी में काम करने के द्वारा तुम अपने-आप पर अत्यधिक भार डाल लेते हो तो इससे नाड़ी-संस्थान क्षुब्ध और दुर्बल हो जाता है और तुम्हें बुरी शक्तियों की क्रिया के प्रति खोल देता है। काम करो, पर शान्ति के साथ करो जिससे तुम्हारी प्रगति एक समान सतत रूप से होती रहे। यही ठीक तरीका है।

'पुरोधा' :

दैनन्दिनी

जनवरी

१. अहंकार यह कभी नहीं समझता कि भिन्न-भिन्न लोगों में भगवान् के काम करने के तरीके भिन्न-भिन्न होते हैं और यह कि अपने अहंकारमय दृष्टिकोण से चीजों का मूल्यांकन करना बहुत बड़ी भूल है जो अस्तव्यस्तता को निश्चय ही बढ़ाती है। हम जो कुछ आवेग तथा असहिष्णुता के साथ करते हैं वह दिव्य नहीं हो सकता क्योंकि भगवान् केवल शान्ति और सामञ्जस्य में ही कार्य करते हैं।

२. हमें विघ्न-बाधाओं को इस तरह देखना चाहिये मानों मानव प्रकृति की मशीन में कुछ गड़बड़ है जिसे बदलना होगा। तुम उन्हें पाप या कुकर्म के रूप में न देखो जो तुम्हारे अन्दर अपने लिए या साधना के लिए निराशा ले आते हैं।

३. जब विरोधी शक्तियां योग को रचनात्मक साधनों, प्रत्यक्ष प्रलोभनों या प्राणिक उपद्रवों द्वारा नहीं तोड़ पातीं तो वे उसे नकारात्मक ढंग से, पहले अवसाद द्वारा या एकदम सामान्य जीवन और साधना को अस्वीकार करके तोड़ने की कोशिश करती हैं।

४. प्रकृति में क्रोध की शक्ति को कम करने और बाद में उससे पूरी तरह पिण्ड छुड़ाने का सबसे पहला उपाय यही है कि उसको अभिव्यक्त करने से बिलकुल इन्कार करो; न क्रियाओं में और न शब्दों में उसे प्रकट होने दो। इसके बाद तुम ज्यादा सफलता के साथ उसे विचार और भावना से भी निकाल बाहर कर सकते हो। सभी गलत गतिविधियों के साथ यही बात है।

५. हमेशा अपने अन्दर की अभीप्सा पर बल दो, उसे हृदय में गहराई और स्थिरता पाने दो; मन तथा प्राण की बाहरी बाधाएं हृदय के प्रेम तथा अभीप्सा के विकास के साथ-साथ अपने-आप ही पीछे हट जायेंगी।

६. मन और हृदय को खुला और अन्दर तथा ऊपर की ओर मुड़ा रखो ताकि जब अन्दर से स्पर्श आये या ऊपर से प्रवाह उतरे तो तुम उसे ग्रहण करने के लिए तैयार रहो।

७. सबसे अधिक मांग की जाती है परम प्रकाश के प्रति मुड़ने के सतत आग्रह की। हम जितना सोचते हैं प्रकाश उससे कहीं अधिक हमारे निकट है और किसी भी समय उसका मुहूर्त आ सकता है।

८. सामान्यतः शुष्कता अपने बारे में बहुत अधिक चिन्ता करना है (चाहे वह भौतिक हो या आध्यात्मिक) तथा परिणामस्वरूप चेतना की संकीर्णता का चिह्न है जो भागवत शक्तियों के साथ काफी घनिष्ठता में नहीं रहती।

उपचार है, भगवान् के प्रति अधिक पूर्ण आत्मोत्सर्ग।

९. ज्ञान की स्पष्टता तथा आन्तरिक आत्मदर्शन, अहं का वशीकरण, प्रेम, निःस्वार्थ तथा समर्पित कार्यों में कर्तव्यनिष्ठा—ये हैं योग-रथ के चार पहिये। जिसके पास ये हैं वह पथ पर सुरक्षा के साथ आगे बढ़ेगा।

१०. हमें अपनी सत्ता की गहराइयों में छिपी पूर्णता, शक्ति, सुन्दरता तथा सत्य को सर्वांगीण रूप से जीना चाहिये। तभी समस्त जीवन उदात्त, शाश्वत, भागवत परम हर्ष की अभिव्यक्ति बनेगा।

११. प्रत्येक मनुष्य जैसा वह स्वयं है उसके अनुसार स्वयं अपने परिवेश की रचना करता है।

१२. जो ज्ञान तुम्हारे पास बाहर से आता प्रतीत होता है वह तुम्हारे अन्दर स्थित ज्ञान को बाहर लाने का केवल एक अवसर होता है।

ऐसा हो कि जीवन की सभी परिस्थितियां, सभी घटनाएं हमेशा अधिक-से-अधिक सीखने के ऐसे अवसर बनें जो सतत रूप से नवीकृत होते रहें।

१३. जो सतत रूप से आध्यात्मिक चेतना में निवास करता है उसके साथ होने वाली सभी घटनाएं अपना विशेष मूल्य रखती हैं और तभी घटनाएं उसके उत्तरोत्तर विकास की ओर प्रवृत्त होती हैं।

१४. प्रेम वह परम शक्ति है जिसे शाश्वत परम चेतना ने अपने अन्दर से एक धुंधले तथा अंधेरे जगत् में इसलिए भेजा कि वह उस जगत् तथा उसकी सत्ताओं को भगवान् तक वापस ला सके।

१५. रूपान्तर होकर रहेगा : कोई चीज उसे रोक नहीं सकती; कोई चीज सर्वशक्तिमान् के निर्णय को निष्फल नहीं कर सकती।

१६. "सुखी वह है जिसके पास कुछ नहीं है," यह वही है जिसके अन्दर

अधिकार की भावना नहीं है, यह ऐसा व्यक्ति है जो, चीजें उसके पास आयें तो उनका उपयोग कर सकता है, यह जानते हुए कि वे उसकी नहीं हैं, वे परम प्रभु की हैं, और जो, इसी कारण, जब चीजें दूर चली जायें तो उनके लिए दुःखी नहीं होता।

१७. अच्छाई से प्रेम के कारण अच्छा बनना चाहिये, ईमानदारी से प्रेम के कारण ईमानदार होना चाहिये, पवित्रता से प्रेम के कारण पवित्र होना चाहिये और निःस्वार्थता से प्रेम के कारण निःस्वार्थ होना चाहिये; तब तुम राह पर आगे बढ़ोगे, यह बात निश्चित है।

१८. ... उत्साह के साथ अपनी सारी सत्ता को और सत्ता के सब भागों को बिना हिसाब किये भगवान् को दे देना, यही अहं से छूटने का सबसे छोटा रास्ता और सबसे मौलिक उपाय है। तुम कहोगे कि यह करना मुश्किल है, लेकिन कम-से-कम इसमें ऊष्मा, उमंग, उत्साह, ज्योति, सौन्दर्य हैं, इसमें एक उमंग-भरा और सर्जनात्मक जीवन है।

१९. हम यहां जिसे सच्चा निर्वाण मानते हैं वह है परम प्रभु की गरिमा में अहं का अदृश्य होना।

२०. सत्य की झांकी पाने के लिए हमें अपनी चेतना में कम-से-कम एक कदम पीछे हटना चाहिये, अपनी सत्ता में कुछ गभीरता के साथ प्रवेश करना चाहिये, और आभासों के पीछे शक्तियों की लीला को देखने का प्रयास करना चाहिये और शक्तियों की लीला के पीछे दिव्य उपस्थिति को देखने का प्रयास करना चाहिये।

२१. हमेशा आन्तरिक अभीप्सा पर जोर दो, उसे हृदय में गभीरता और स्थिरता पाने दो। हृदय के प्रेम और अभीप्सा के विकास के साथ-साथ मन और प्राण की बाह्य बाधाएं अपने-आप पीछे हट जायेंगी।

२२. प्रश्न : व्यक्ति अपनी ग्रहणशीलता कैसे बढ़ाये?
उत्तर : जितनी अधिक उसमें समर्पण की भावना होगी उतनी अधिक उसमें ग्रहणशीलता भी होगी।

२३. इस साधना की धारा में प्रवेश पाने के लिए कर्म ही सबसे सरल और सबसे अधिक प्रभावकारी तरीका है।

२४. शुरू-शुरू में काम करते हुए उपस्थिति को याद रखना आसान नहीं है; लेकिन अगर तुम काम समाप्त होने पर तुरन्त उपस्थिति के भाव

को फिर से जगा सको तो इतना काफी है। समय आने पर, काम करते हुए भी उपस्थिति का भाव स्वचालित हो जायेगा।

२५. सब कुछ अन्दर से शान्ति के साथ करना चाहिये—काम करना, बोलना, पढ़ना, लिखना सच्ची चेतना के अंश के रूप में करना चाहिये—सामान्य चेतना के बिखरे हुए और अशान्त क्रियाकलाप या गतिविधि के साथ नहीं।

२६. तुम जितने अधिक दुःखी होओगे और रोना-धोना करोगे उतने ही अधिक मुझसे दूर होते जाओगे। भगवान् **दुःखी नहीं हैं** और भगवान् को पाने के लिए तुम्हें समस्त दुःख और समस्त भावुक दुर्बलता को अपने से बहुत दूर फेंक देना होगा।

२७. हम कभी अकेले नहीं होते। भगवान् हमेशा हमारे साथ होते हैं। यह हमारी जिम्मेदारी है कि हम उनकी उपस्थिति के बारे में सचेतन हों।

२८. जब तुम अपनी पुरानी प्रकृति से सचमुच तंग आ जाते हो और चाहते हो कि चीजें दूसरी तरह से हों, तब तुम्हारे अन्दर भय, शंका तथा सन्देह पर विजय पाने का साहस, बल, तथा सामर्थ्य आ जाता है।

२९. जब हमारे विचार प्रभु की ओर मुड़ जाते हैं और हम स्वयं को प्रभु को समर्पित कर देते हैं तो सब कुछ कितना सुन्दर, भव्य तथा सरल बन जाता है!... हमारी अपनी पूर्णता के साथ-साथ हमारे अन्दर दूसरों के प्रति एक उदार समझ भी विकसित होती जाती है।

३०. सभी भयों, सभी संघर्षों, सभी झगड़ों को झाड़ फेंको; अपनी आंखों तथा अपने हृदय को खोलो, और तुम देखोगे कि अतिमानसिक प्रकाश यहां उपस्थित है।

३१. जागरूक होने का अर्थ केवल यही नहीं है कि जो चीज तुम्हें नीचे की ओर खींचती है उसका प्रतिरोध करो, बल्कि उसका अर्थ है सजग होना ताकि तुम प्रगति करने का, किसी कमजोरी को जीतने का, किसी प्रलोभन का प्रतिरोध करने का, किसी चीज को सीखने का, किसी चीज को सुधारने का, किसी चीज पर संयम स्थापित करने का कोई अवसर न खो दो। यदि तुम जागरूक हो तो जिस चीज को करने में बरसों लग जाते उसे तुम कुछ ही दिनों में कर सकते हो।

एक कप्तान के साथ श्रीमां का पत्र-व्यवहार

[तारा जौहर कई वर्षों तक श्रीअरविन्दाश्रम के शारीरिक-शिक्षण विभाग में छोटे बच्चों (हरित दल) की कप्तान रहीं।]

मधुर मां,

"भौतिक चेतना की नीरवता" ('दिव्य जीवन' से) का क्या मतलब है और हम इस नीरवता में कैसे रह सकते हैं?

भौतिक चेतना केवल हमारे शरीर की ही नहीं बल्कि जो कुछ हमारे इर्द-गिर्द है उस सबकी, अर्थात् हम अपनी इन्द्रियों द्वारा जिस किसी का बोध पाते हैं उस सबकी चेतना है। वह अभिलेखन और सञ्चार का एक तरह का यन्त्र है जो बाहर से आने वाले सभी सम्पर्कों और आघातों की ओर खुला रहता है और सुख या दुःख की उन प्रतिक्रियाओं द्वारा उनको प्रत्युत्तर देता है जो उनका स्वागत करती या उन्हें ठेल देती हैं। यह हमारी बाहरी सत्ता में सतत क्रियाशीलता और शोर पैदा करता है जिससे हम बहुत अधिक अभ्यस्त होने के कारण केवल आंशिक रूप से अभिज्ञ हैं।

लेकिन अगर ध्यान या एकाग्रता के द्वारा हम अन्दर या ऊपर की ओर मुड़ते हैं तो अपने अन्दर अचञ्चलता, स्थिरता, शान्ति और अन्त में निश्चल-नीरवता को ऊपर से उतार सकते या नीचे गहराइयों में से उठा सकते हैं। यह एक ठोस, सकारात्मक नीरवता है (शोर के अभाव की नकारात्मक नीरवता नहीं), जब तक वह रहे अविकार्य रहती है, यह एक ऐसी नीरवता होती है जिसका अनुभव हम तूफान या युद्धक्षेत्र के शोर-शराबे में भी कर सकते हैं। यह नीरवता शान्ति का पर्याय है और सर्वशक्तिमान् है; यह उस क्लान्ति, तनाव और श्रान्ति का पूर्णतया प्रभावकारी इलाज है जो उस आन्तरिक अति-क्रियाशीलता तथा शोर से उभरते हैं जो साधारणतः हमारे अधिकार से बाहर हो जाते हैं और न दिन को और न रात को बन्द होते हैं।

इसलिए जब तुम योग करना चाहो तो सबसे जरूरी और पहली चीज यह है कि अपने अन्दर अचञ्चलता, शान्ति और निश्चल-नीरवता को उतारो और प्रतिष्ठित करो। १५ अक्तूबर १९५९

मधुर मां,

हम किसी और के संगीत की रचना की भावनाओं में कैसे प्रवेश कर सकते हैं?

उसी तरह जैसे हम औरों की भावनाओं में हिस्सा लेते हैं—सहानुभूति द्वारा, सहज रूप से, न्यूनाधिक रूप से गभीर सादृश्य द्वारा या फिर एकाग्रता के ऐसे प्रयास द्वारा जिसका अन्त तादात्म्य में होता है। जब हम किसी संगीत को तीव्र तथा दत्तचित्त एकाग्रता से सुनते हैं तो इस अन्त में बतलाये गये तरीके का उपयोग करते हैं, यहां तक कि सिर में अन्य सब आवाजें बन्द करके पूर्ण नीरवता प्राप्त करते हैं, जिसमें बूंद-बूंद करके संगीत के स्वर टपकते हैं और जहां केवल संगीत की ध्वनि रह जाती है; और उस ध्वनि के साथ-ही-साथ सभी भावनाएं, भावों की सभी गतिविधियां पकड़ में आ सकती, अनुभव की जा सकती हैं और फिर से इस तरह महसूस की जा सकती हैं मानों वे हमारे अन्दर ही पैदा हो रही हों।

२० अक्तूबर १९५९

मधुर मां,

हम स्वप्न में अच्छे और बुरे में कैसे फर्क कर सकते हैं?

सिद्धान्त रूप में, नींद के क्रिया-कलाप का मूल्यांकन करने के लिए हमें उसी तरह की विवेक-शक्ति की जरूरत होती है जैसी जाग्रत् क्रिया-कलाप को परखने के लिए।

लेकिन चूंकि हम सामान्यतः ऐसी बहुत-सी क्रियाओं को "स्वप्न" का नाम दे देते हैं जो एक-दूसरे से बहुत भिन्न होती हैं इसलिए जो चीज सबसे पहले सीखनी चाहिये वह है विभिन्न प्रकार की क्रियाओं में भेद कर सकना, यानी यह जानना कि सत्ता का कौन-सा भाग "स्वप्न" देख रहा है, हम किस क्षेत्र में "स्वप्न देख रहे हैं" और उस क्रिया की क्या प्रकृति है। श्रीअरविन्द ने अपने पत्रों में नींद की सभी क्रियाओं का पूरा-पूरा और विस्तृत वर्णन और स्पष्टीकरण दिया है। इस विषय का अध्ययन करने और उसका व्यावहारिक उपयोग करने के लिए इन पत्रों को पढ़ना एक अच्छा परिचय प्राप्त है।

२ नवम्बर १९५९

मधुर मां,

हमें आपकी और श्रीअरविन्द की पुस्तकें कैसे पढ़नी चाहियें ताकि वे मन द्वारा समझे जाने की जगह हमारी चेतना में पैठ सकें?

मेरी पुस्तकों को पढ़ना कठिन नहीं है क्योंकि वे बहुत ही सरल भाषा में, लगभग बोल-चाल की भाषा में लिखी गयी हैं। उनसे सहायता लेने के लिए इतना काफी है कि उन्हें ध्यान और एकाग्रता के साथ, सद्भावना के आन्तरिक मनोभाव और जो कुछ सिखाया जा रहा है उसे ग्रहण करने और उसे जीने की इच्छा के साथ पढ़ा जाये।

श्रीअरविन्द ने जो लिखा है उसे समझना ज्यादा कठिन है क्योंकि अभिव्यञ्जना बहुत बौद्धिक है और भाषा कहीं अधिक साहित्यिक और दार्शनिक। दिमाग को इसे सचमुच समझने के लिए काफी तैयारी की जरूरत होती है और आम तौर पर उस तैयारी में समय लगता है, जब तक कि व्यक्ति के अन्दर सहज अन्तर्भासात्मक क्षमता की प्रतिभा न हो।

बहरहाल, मैं हमेशा यह सलाह देती हूं कि एक समय में थोड़ा-सा पढ़ो, मन को जितना बन सके उतना निश्चल और स्थिर रखो, समझने की कोशिश न करो, लेकिन जहां तक सम्भव हो मन को नीरव-निश्चल रखने की कोशिश करो, जो तुम पढ़ रहे हो उसमें **जो शक्ति** है उसे अपने **अन्दर गहराई में** प्रवेश करने दो। स्थिरता और नीरवता में प्राप्त की हुई यह शक्ति मस्तिष्क को आलोकमय बनाने का कार्य करेगी और जरूरत हो तो उसमें समझने के लिए आवश्यक कोषाणुओं का निर्माण करेगी। इस तरह, जब हम उसी चीज को कुछ महीनों के बाद दुबारा पढ़ते हैं तो देखते हैं कि वहां पर अभिव्यक्त किया गया विचार बहुत अधिक स्पष्ट और निकटतर है, यहां तक कि कई बार तो बिलकुल परिचित मालूम होता है।

ज्यादा अच्छा यह है कि नियमित रूप से और यदि सम्भव हो तो बंधे हुए समय पर, थोड़ा-थोड़ा पढ़ा जाये। यह मस्तिष्क की ग्रहणशीलता को ज्यादा सरल बना देता है।

२ नवम्बर १९५९

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १६, पृ. २६२-६५

मेहरबानी करके ज़रा ख़याल रखियेगा...

(उर्दू की चाशनी में पगा यह किस्सा 'पुरोधा' अगस्त २००८ की सौगात है... सं.)

घर से निकाले गये हम सड़क पर भटक रहे थे कि हवा के एक झोंके ने गाल सहला कर पूछा—"क्या हाल है जनाब का?" हमारी भौहें तन गयीं, मुंह से बेसाख्ता निकला पड़ा—

न छेड़ ए नक्हते बादे बहारी (वसन्त के पवन की सुगन्ध) राह लग अपनी,
तुझे अठखेलियां सूझी हैं, हम बेज़ार (अन्यमनस्क) बैठे हैं।

जी हां, हम सचमुच बेज़ार, बेबस, बेघर और न जाने क्या-क्या बने बैठे थे—कसूर क्या था हमारा?—बेकसूरी का कसूर! पहले सोचा करते थे, वाह! अल्लाह की हम पर कितनी मेहरबानी है कि हमें रहमदिल तो बनाया, पड़ोसी खांसता है तो हमारे गले में खराश होने लगती है, रास्ता चलते मुसाफिर का बच्चा बुक्का फाड़ कर अपना हारमोनियम बजाता है तो हमारा कलेजा भीग-भीग जाता है, सामने वाले मकान में पानी की किल्लत हो तो हमारा हमाम उनकी खिदमत में चौबीसों घण्टे खुला रहता है, किसी आवारा कुत्ते की टांग टूट जाये तो हमारे सारे दिन पर मनहूसी पुत जाती है और अगर सड़क पर कोई मेमना अपनी मां से बिछुड़ कर मिमियाता सुनायी दे तो हम फौरन उसकी मदद करने पर आमादा हो जाते हैं, और न जाने किस-किस को देख कर क्या-क्या नहीं गुजरती है हमारे दिल पर। लिखने बैठें तो फ़ेहरिस्त का अगला सिरा न दीखे। लोग-बाग हम पर हंसते हैं, कभी खुल्लम-खुल्ला, कभी मूंछों ही मूंछो में, पूछ बैठते हैं—काज़ीजी दुबले क्यों?—कोई बतला दो कि हम बतलायें क्या! यह सवाल हमारे सर्जनहार से क्यों नहीं पूछा जाता जो हमारे जिगर को गलती से मोम का गढ़ बैठे, जरा-सी हरारत हुई नहीं कि पसीजने लगता है, लेकिन फिर भी हमें अपने मोम के कलेजे का कोई गम नहीं, हम तो उन अल्लाह मियां का लाख-लाख शुक्रिया अदा करते हैं कि उन्होंने हमें संगदिल तो न बनाया, तोबा, तोबा! हमारी आपा को ही देख लीजिये, संगदिल नहीं तो

और क्या हैं? सुबह की नमाज़ की गूंज सारे आलम में सुकून (शान्ति) का माहौल पैदा कर रही थी कि हमारे कानों में आपा के शब्दों के हथौड़े बजने लगा—"खतम कर दूंगी, इसने समझ क्या रखा है, रोज-रोज आकर इतना सत्यानास कर जाता है।" हड़बड़ा कर आंखें खोलीं तो पाया, आपा हाथ में झाड़ू का परचम (झण्डा) लिये फर्श पर पड़ी किसी नाचीज़ पर बरस रही थीं, उसे इस दुनिया से फ़ना कर देने की कसमें खा रही थीं, हमारा कलेजा रेलगाड़ी की तरह धड़धड़ाने लगा। हां, फिर किसी चूहे की जान पर बन आयी है, हम एक बार नहीं कई बार उन्हें समझा चुके हैं, डांट चुके हैं, डरा चुके हैं, धमका चुके हैं कि इस तरह जीव-हत्या करती चली जाओगी तो क़यामत के दिन ये सारे चूहे, तिलचट्टे, छिपकलियां अपने शिकायतनामे अल्लाह मियां को पेश करेंगे; यहां तक कि चींटियां भी तुम्हें न छोड़ेंगी, लेकिन उनके पत्थर दिल को हमारी दरियादिली कतई नहीं भिगो पाती, उलटा हमीं पर बरस पड़तीं—"हां, हां, मारूं नहीं, तुम्हारी तरह इन्हें दामन में बांधे-बांधे फिरूं, खुद फ़ाका रख कर इनकी बारात को न्यौत आऊं, हां, हां, इन्हें पाल कर खुद अपने ही घर मेहमान की तरह रहना तुम्हें ही मुबारक हो..." अब आपा के कौन मुंह लगे, आखिर वे आपा जो ठहरीं! हम भी मुंह बिचका कर कह बैठते हैं—"हुं, ठीक है, रहें अपने घर सेठानी की तरह हमारी बला से!!"

हमारे दिल की किताब का पहला सफ़ा तो आप पलट चुके हैं, अब आगे की दास्तान भी सुनना चाहेंगे?

वाक़या यह हुआ कि शायद हमारी दरियादिली का डंका इन्सानों में ही नहीं हैवानों में भी पिट गया। प्यास से बेदम उस कौए ने उस दिन जो हमारी छत के नल से बूंद-बूंद पानी पिया तो हमारी आंखें नम हो आयीं, उस दिन से हमने छत पर चील-कौओं के लिए तश्तरियों में प्याऊ खोल दिये। अब छत पर सवेरे, दोपहर, शाम जिस महफिल की मसर्रत (आनन्द) हमें मयस्सर होती, वह इर्द-गिर्द के लोगों में हसरतअंगेज़ निगाहों का सबब बन जाती। धीरे-धीरे हमारे घर के अन्दर भी चहल-पहल शुरू हो गयी, हम अपने-आपमें फूले नहीं समाते कि हमारे सिवाय कौन है ऐसा बन्दा इस इलाके में जिसके हाथों से चिड़िया दाना चुग लेती हो, जिसके पेट पर गिलहरियां धमा-चौकड़ी मचाती हों, जिसके प्याऊ पर किसी की

रोक-थाम नहीं और जिसकी छत पर फाख्ता का जोड़ा उतरता हो। लेकिन जब कभी आपा आ जातीं तो हमारे घर को अजायबघर, पिंजड़ा और न जाने क्या-क्या नाम देकर फिर कभी कदम न रखने की क़समें खा-खा कर ही हमेशा लौटतीं... यह और बात है कि ये क़समें सिर्फ उसी वक्त के लिए हुआ करती थीं।

वह रात भयानक थी, बिजली की उस भरपूर कौंध ने हमारी नींद को चिटका कर टुकड़े-टुकड़े कर दिया, हम होशोहवास में अभी आ भी नहीं पाये थे कि फिर से बेहोशी का-सा आलम छाने लगा—हमारी रेशमी साड़ी दरवाजे से बाहर आहिस्ता-आहिस्ता खिंची चली जा रही थी—'चोर', यह दहशतभरा लफ्ज़ अभी हमें अपने चंगुल में जकड़ ही रहा था कि खटर-पटर की आवाजें कमरे के अन्दर से भी आने लगीं, हमारा खून जम गया —अन्दर और बाहर के चोर के बीच अकेला इन्सान!! कभी सूईटपक खामोशी तो कभी खौफ़नाक आवाजें!! क्या बतायें आपको अब, दिल और दिमाग दोनों अपने-आपको खो बैठे थे। वह लम्बी रात हमारे लिए क़यामत का नमूना बन गयी, गनीमत यह हुई कि सवेरे तक हमारा दिल धड़कना जारी रख सका और उधर सवेरे-सवेरे पता नहीं आपा कहां से नमूदार हो गयीं! बस हमारी जो घिग्घी बंधी तो उनके हाथ के तोते उड़ गये। धीरे-धीरे सारी बात सुनी-समझी और फिर लगीं हमीं पर बरसने —"और पालो गीदड़-चमगादड़ का कुनबा। रेशमी साड़ी को कुतर-कुतर कर रूमाल बनाया तुम्हारे ही घर पल रहे मोटे चूहे ने, रात की खौफ़नाक आवाजें तुम्हारी उन्हीं गिलहरियों के खानदान की थीं जिन पर तुम दिन में जान छिड़कती हो..." फिर तो आपा ने सचमुच आपा का लबादा ओढ़ हमारे चमचमाते हुए घर की सफाई की मुहिम (अभियान) का ऐलान कर दिया, हम सकते में आ गये, उनकी उठा-पटक से हमारा दिल बैठने लगा। अचानक वह चीखीं—"मिल गया, मिल गया।" शायद उनके हाथ अलादीन का चिराग लग गया था—आह! क्या बतायें अब आपको, ऐसा खूबसूरत, मुलायम गिलहरी का आशियाना था वह जिसमें जन्नत का सुख नसीब हो और हमारे मेहमान ने उसे संवारा था हमारे ही गुमशुदा बुन्दों, रूमाल, अंगूठियों से। इधर हम फ़िदा हो रहे थे अपनी गिल्लो रानी की सूझ-बूझ पर, उधर आपा ने उनको निकाल फेंकने का हुक्म दे डाला—या अल्लाह!

उनकी ऐसी संगदिली का तो हमें ख्वाब में ख़याल न आया था। अगर उनमें ज़र्रा भर इन्सानियत होती तो ऐसे अलफाज़ मुंह से निकाल पातीं क्या? कैसी-कैसी मिन्नतें नहीं कीं हमने और बदले में हमें भी अपने ही घर से निकल जाने का हुक्म मिल गया। किसी और की क्या हम ऐसी बेरहमी बर्दाश्त कर लेते? लेकिन आपा की नाराज़गी के सामने अब हमारा और कुछ बोलना नक्कारखाने में तूती की आवाज बन कर रह जाता। देखते ही देखते आपा ने हमारे लहराते बियाबान की बहार को खिज़ां (पतझड़) में बदल डाला। बढ़ई बुलवा लायीं, बोलीं—"देख, तेरे कमरे के दरवाजे के सामने आज ही जाली का दरवाजा लगवाये देती हूं, कमरा हवादार और रौशन रहेगा और दिन-रात चूहे, बिल्ली, गिलहरी के घुसने के खौफ से तू निजात पा जायेगी।" हमारा दिल कह उठा—बख्शो भी बिल्ली, तोता लंडोरा (दुमकटा) ही जियेगा, चहल-पहल के बगैर हमारा गुलिस्तान कब्रिस्तान न बन जायेगा! लेकिन क्या हम उनके दिल से अपनी फ़रियाद की सुनवायी की उम्मीद कर सकते थे... अचानक दरवाजे पर चीं-चीं की दस्तक हुई। हमारी हमजोली गिलहरी अपने ही घर लौटी, लेकिन आज का यह बदला हुआ मंज़र और माहौल देख हमसे आंखों ही आंखों में पूछ बैठी—"भई, मामला क्या है, हमें अन्दर आने न दोगी क्या?" अश्कों को ज़ब्त करने की कोशिश में हमारा कलेजा मुंह को आ गया, उधर गिल्लो रानी हमारी खामोशी देख अदब से चूम के आस्ताना लौट पड़ीं।

उनके पलटते ही हमारे दिल में यादों का सैलाब उमड़ आया। हम भी बेघरबार हो गये, बगीचे में उतर कर, भटकते-भटकते जब "बादे-बहारी" ने गाल पर प्यार से चिकोटी काटी तो उसी पर बरस पड़े। वह भी चालाक निकली, आहिस्ता-आहिस्ता धकेलते, सरकाते हमें हमीं के दरवाजे पर ले आयी—नजर उठा कर देखा तो ऐतबार न हुआ—हमारे घर के बाहर की खुली छत पर जहां रोज शाम को तोता, मैना, सोनचिरैया, बुलबुल और न जाने किन-किन कव्वालों की महफिल जमती थी आज वहां अलग ही नज़ारा था! हमारी गिल्लो इधर-से-उधर, उधर-से-इधर फिरकी की तरह चक्कर काटती, हर एक चिड़िया को खदेड़ती फिर रही थी मानों हमारी तरफ से कह रही हो—भाग जाओ, सब भाग जाओ यहां से, यह मेरी मिल्कियत है तुम्हारी नहीं...। हमारी नज़रों से नज़रें मिली नहीं कि उसकी भाग-दौड़

दोगुनी हो गयी—"अरे कल इसके लिए जो अपने थे वे आज बेगाने हो गये" के ख़याल ने हमारे अपने गाल पर उसने मानों एक तमाचा जड़ दिया। और उसने अपनी क़हरभरी तेज़ निगाहों के तमाचे हम पर ऐसे जड़े कि हमारी बत्तीसी हिल गयी और वे नज़रें हमसे कह उठीं—"तुमसे अपने शीशमहल में मेरा ग़रीबखाना न सहा गया और तुम उसे तहस-नहस किये बिना न रह सकीं। अरे, कोई तुम इन्सानों से पूछे कि खुदा के इतने बड़े जहान में जहां-तहां सीमेंट के आशियाने लटका कर उन्हें अपनी मिल्कियत बतलाना ज़्यादती नहीं है क्या? उसने तो अपने मुल्क से तुम्हारे आशियाने यूं तोड़-तोड़ कर तुम्हें बेघर न किया—फिर हमीं पर यह ज़ुल्म क्यों?" कितने चुभते हुए थे उसके बेबाक अलफाज़... हम आपा के सामने यह दलील पेश करने के लिए आगे बढ़े नहीं कि दिल धक् से रह गया—हमारे कमरे के दरवाजे के सामने जाली का दरवाजा लग चुका था और आपा वहीं खड़ी थीं, बोल उठीं—"अरे, कहां चली गयी थी? देख, मैंने सारा पुख्ता इन्तज़ाम करवा दिया है तेरे लिए। तेरे अजायबघर को घर की सूरत दे दी है, अब मैं चली, मुझे देर हो रही है। खुदा-हाफिज़।"

वास्तव में अब खुदा ही हमारा हाफिज़ था, खुदा ने जिन हाफिज़ों को भेजा था उन्हें तो आपा ने ऐसी बेदर्दी से खदेड़ कर निकाल फेंका कि अब वे हमारी भलमनसाहत पर कभी ऐतबार कर पायेंगे क्या?

हमारे घर का जाली का दरवाज़ा आज भी इस उम्मीद से खुला रहता है कि शायद किसी रोज ऊपरवाला हम पर रहम कर दे और हमारे दरवाज़े पर वह दस्तक सुनायी दे जिसे सुनने के लिए हमारी रूह कब से बेताब हो रही है... लेकिन मेहरबानी करके ज़रा ख़याल रखिये कि यह दस्तक आपा के कानों के दरवाज़े तक न पहुंचने पाये...

—वन्दना

सुमन का शिव-संकल्प

"सुशोभन सृष्टि को मैं सुन्दर शोभायमान बनाऊंगा, देवत्व की मैं अभ्यर्थना करूंगा, संसार को मैं ऐसा सुवास दूंगा, जिससे जन-जन का मन पुलकित-प्रफुल्लित हो उठे।"

एक नन्हा-सा पुष्प-बीज धरती की गोद में अपने इस शिव-संकल्प के साथ कभी इधर, कभी उधर करवट बदल रहा था। धरती उसके बौनेपन पर हंस पड़ी, बोली—"बावले! तू मेरा भार सहन कर जाये यही बहुत है। कल्पनालोक की मृगमरीचिका में तू कब से फंस गया?"

पुष्प-बीज मुस्कुराने लगा। अभी तक उसे एक जल की बूंद ही मिल पायी थी, पर उसी से तृप्ति पाकर पुष्प-बीज के मुस्कुराते अधरों ने ऊपर उठने का उपक्रम किया। बीज की आत्मा उसी के साथ फूट पड़ी और वह मृत्तिका-कणों की तह से धीरे-धीरे ऊपर उठ आयी तथा जीवन के द्वितीय चरण की तैयारी करने लगी।

उगी हुई टहनी को देख कर वायु देवता ने अट्टहास किया। रे, रे अबोध पौधे! तूने मेरा विकराल रूप नहीं देखा, जब मैं अपनी उनचास शक्तियों सहित चलता हूं तो पर्वत ढह जाते हैं, समुद्रों में तूफ़ान आ जाता है, तेरी तो औकात ही क्या? विशाल वट-विटप तक ढेर हो जाते हैं।

फूल का वह नन्हा पौधा अति विनम्र बना रहा। कभी वह दाएं झुका, कभी बाएं। लहराना उसके जीवन की मस्ती बन गयी। तूफ़ान आये, बड़े-बड़े वृक्ष धराशायी हो गये, पर बड़ी जीवट थी उस विनम्रता में जिसके सहारे पौधा केवल खड़ा ही नहीं रहा, निरन्तर और निरन्तर विकसित होता गया।

उपवन में उगा झंखाड़ पौधे का यह बढ़ना देख नहीं सका। ऐसे झंखाड़ से सारा उद्यान भरा पड़ा था। चारों ओर से उन्होंने पुष्प-वृक्ष पर आघात करना प्रारम्भ कर दिया। किसी ने जड़ों को आगे बढ़ने से रोका, तो किसी ने तने को। कई ने पत्तों को उजाड़ने की साज़िश की। पौधा घायल हो जाता था, पर हिम्मत नहीं हार रहा था। उसकी धुन पर माली मुग्ध हो उठा। एक दिन उसने विघ्न डालने वाली उन तमाम झाड़ियों को काट गिराया। अब पौधे को अपने संकल्प-पूर्ति की दिशा में क्षिप्र गति से बढ़ने का नूतन सम्बल मिला। सो उसकी गति भी वेगवती होने लगी।

ऊपर उठते पौधे को देख कर सूर्यदेव अहंकारवश कुपित हो उठे। मेरी ऊंचाई छूने का साहस करने वाले रे पौधे, मेरे प्रचण्ड ताप के कारण भारी वृक्ष तक सूख जाते हैं, फिर तुझ पर तो कोई छाया करने वाला भी नहीं। आखिर तू अपनी रक्षा करेगा कब तक?

पौधा कुछ बोला नहीं, वह था कर्मठ कर्मयोगी। तितिक्षा को उसने अपने

जीवन में धारण किया, तपश्चर्या ने उसके प्राणों में नयी चेतना, नया प्राण भरना शुरू किया। उस दिन उसमें प्रथम कलिका विकसित हुई। पहली बार संसार ने देखा कि जो बीज की तरह अपने-आपको गलाना जानता है, जो बाधाओं से टक्कर लेना जानता है, प्रतिघातों में भी जो उत्तेजित और विचलित नहीं होता, तितिक्षा से जो कतराता नहीं, उसी का जीवन सौरभ बन प्रस्फुटित होता है। वही देवत्व की अभ्यर्थना करता है और संसार को ऐसी सुगन्ध से भर देता है, जिससे जन-जन का मन पुलकित और प्रफुल्लित हो उठता है।

—'मधु-सञ्चय' से साभार

चरणों में अर्पित हैं

(हमारे शिक्षा-केन्द्र की संस्कृत अध्यापिका की हिन्दी रचना)

शिशिरकणों से सिक्त सुमन से
मां के चरण कमल अम्लान
शुभ्र कमल की पावन स्मिति-सा
मां तेरा यह धवल प्रकाश।।
चिन्मय चारु चरण द्युति पर तव
मुस्काता नित प्रात सुनहला
अञ्चल में बिखरा कर रोली
आती रवि किरणों की टोली।।
कलियां पल्लवमय घूंघट से
मन्द समीरण के पंखों से
अपनी मधुमय मुस्कानों से
गाती सुरभित गीत रुपहला।।
देकर सौरभ गन्धवहन को
कहते सारे विकसित फूल
मां के चरणों में अर्पित हैं
हम सब उनकी पावन धूल।।

—आशा अग्रवाल

शुभं भवतु नववर्षं सर्वेषाम्

(जनवरी १९८८ के 'पुरोधा'-अंक में विशेषकर बच्चों के लिए लिखी संस्कृत की यह कहानी प्रकाशित हुई थी। उस कहानी के साथ-साथ इस अंक में उसका हिन्दी अनुवाद भी दिया जा रहा है।

आशा है न केवल हमारे संस्कृतप्रेमी पाठक बल्कि हिन्दीप्रेमी भी, सरल संस्कृत में लिखी इस लघु कथा को अवश्य सराहेंगे। —सं.)

व्यतीतमिदं वर्षम्। समासन्नं च नूतनम्। अभिवन्दनं ते नूतनवर्ष हे!

गुरुजनानाम् आशीर्वचनैः बालकाः वर्धन्ते। कथाश्रोतारः यूयं बालकाः। अपि जानीथ किम् एतत् नूतनवर्षम्? तत् तु अस्माकं पितामहसदृशं समादरणीयम्। अथ वा किं न एतत् भारतस्य सुजातपिता (Christmas Father) यः नूतने वर्षे समायाते एव अस्माकं हृत्स्योते बहुमूल्यान् विविधान् उपहारान् निक्षिपति यथा प्रगतेः तीव्राकाङ्क्षाम्, स्वकार्येषु नवीनोत्साहेन सङ्लग्नताम्, सर्वं सुचारुरूपेण कर्तुम् इच्छाम्, अतीतं विस्मृत्य सर्वैः सह प्रेम्णा वर्तनम्, नूतनकर्मणामुत्साहम् च। अनन्ताः खलु नववर्षस्य उपहाराः, नैवम्, अस्तु।

यूयं सर्वे एव कथाप्रियाः। अस्माकं सुजातपिता अपि कथानामुपहारं भृशं रोचयति किन्तु किं तस्य कथाः केवलं मनस्तोषाय मनोरञ्जनाय च? अथ वा, भवति सर्वदैव तासां पृष्ठे कश्चित् गभीरः कोऽपि अर्थः सन्देशः वा।

अहं ननु सन्देशवाहिका नूतनवर्ष-रूपिणः सुजातपितुः—युष्माकमर्थे अस्ति अस्मिन् मासे कथाद्वयम् उपहारतया। श्रूयताम्—

आसीत् कश्चित् राजस्थानीयः विख्यातसाहित्यकारः 'टोडरमल' इति नाम। कदाचित् 'मोक्षमार्गप्रकाशः' इति स्वग्रन्थलेखने अहर्निशं निरतः अभवत्। बहूनि दिनानि व्यतीतानि। एकदा रात्रिभोजनसमये सः मातरमपृच्छत्, मातः, प्रतीयते यदद्य त्वया भोजने लवणं विस्मृतम्!

सस्नेहं माता पुत्रमकथयत्—वत्स, मन्ये तव ग्रन्थलेखनमद्य अवसितम्।

साश्चर्यं पुत्रः मातरमपृच्छत्—आम्, मातः, सत्यमेव। अद्य सायमेव मया स्वलेखनं समाप्तं किन्तु कथं ज्ञातं त्वया?

'वत्स, गतषण्मासेभ्यः अहं लवणरहितमेव भोजनं पचामि किन्तु अद्यैव

त्वया लवणस्य अभावः लक्षितः। तस्मात् अहं तव ग्रन्थसमापनविषये निःशङ्का संवृत्ता', माता उदतरत्।

तथैव अस्ति अन्या अपि कथा—उमरः इति नाम खलीफ़ा सर्वदा नियतसमये 'नमाज़' अपठत्, वारमेकमपि नमाज़-पाठे प्रमादः नाभवत्। नमाज़्-पाठे सर्वदा सः तल्लीनः भवति स्म। एकदा तस्य पादे कश्चित् कण्टकः प्रविष्टः। व्यथया सः उद्विग्नः जातः। तस्य कण्टकस्य स्पर्शोऽपि भृशं व्यथाकरः अभूत् किं पुनः निष्कासनम्। सर्वे सचिन्ताः, किङ्कर्तव्यविमूढाः च जाताः।

तस्मिन् एव समये केनापि वृद्धजनेन कथितम्—कण्टकनिष्कासनस्यार्थे मा प्रयततां सम्प्रति, अचिरमेव खलीफ़ा-महोदयस्य नमाज़-कालः भविष्यति तदा सुखेन कण्टकं निष्कासयतु।

सर्वे चकिताः अभवन्, केचन अन्तरि एव अहसन्, अन्ये तथैव चिन्तातुराः अन्योपायान् अचिन्तयन्। यथानित्यं खलीफ़ा नमाज़ अपठत्। वयोवृद्धः क्षणेनैव तस्य कण्टकं बहिरकरोत्। खलीफ़ा किमपि न अजानत्; तस्य अद्वितीयां एकाग्रतां वीक्ष्य सर्वे उपस्थितजनाः चकिताः जाताः।

किं यूयम् अपि चकितचकिताः? किन्तु ईदृशी एकाग्रता सर्वथा सम्भवा। नास्ति अत्र अतिशयोक्तिः।

नूतनवर्षस्य एषः एव उपहारः युष्माकं सर्वेषाम् अर्थे—एकाग्रतायाः वृद्धिः। अद्य प्रभृतिः प्रत्येकं लघुकार्यमपि एकाग्रमनसा करिष्यथ अचिरमेव यूयं नूतनवर्षस्य अस्य बहुमूल्योपहारस्य वैशिष्ट्यं ज्ञास्यथ।

सबके लिए नववर्ष शुभ हो

एक साल और बीत गया। नूतन वर्ष द्वार पर आन खड़ा हुआ। हे नववर्ष! अभिनन्दन तुम्हारा!

गुरुजनों के आशीर्वचनों से बच्चे पनपते हैं। तुम सब बच्चे कहानी सुनने के लिए लालायित रहते हो। क्या तुमलोग जानते हो कि क्या होता है नूतन वर्ष? यह तो हमारे पिता के समान समादरणीय है। या फिर, क्या यह भारत के 'सुजात-पिता' यानी, 'क्रिस्मस फ़ादर' नहीं है जो नववर्ष के आते ही हमारे हृदय की झोली को बहुत ही मूल्यवान्, विविध उपहारों से

भर देते हैं; जैसे, प्रगति के लिए तीव्र कामना, अपने हर कार्य में नवीन उत्साह के साथ संलग्नता, सब कुछ अच्छी-से-अच्छी तरह करने की लगन, अतीत की कड़वाहट को भूल कर सबके साथ प्रेमभरा व्यवहार; यानी, शुभ से शुभतर की ओर डग भरते हुए शुभतम तक पहुंचने की तीव्र आकांक्षा। नववर्ष के अनन्त उपहार होते हैं, है न?

तुम सभी कथाप्रिय हो। हमारे 'सुजात-पिता' भी कहानियों के उपहार देना बहुत पसन्द करते हैं, लेकिन क्या उनके ये उपहार केवल मनोरञ्जन, मनबहलाव के लिए होते हैं? या फिर, उनके पीछे हमेशा कोई गभीर अर्थ या सन्देश नहीं होता क्या? होता है, हमेशा होता है।

तो मैं हूं नूतनवर्षरूपी 'सुजात-पिता' की सन्देशवाहिका—तुम सबके लिए इस महीने दो छोटी-छोटी कहानियों का उपहार भेजा है उन्होंने। लो, सुनो बच्चो—

राजा टोडरमल का नाम बड़े बच्चों ने जरूर सुना होगा। राजस्थान के प्रसिद्ध साहित्यकार थे वे। 'मोक्षमार्गप्रकाशः' उनका बहुत प्रसिद्ध ग्रन्थ है। कहते हैं कि जब वे उसके लिखने में निरत थे तब उनको दुनिया-जहान का कोई होश न रहता था। कई दिन बीत गये। एक दिन, शाम के भोजन के समय वे मां से बोले, "मां, लगता है आज आप खाने में नमक डालना भूल गयीं!"

प्यार से मां ने पूछा, "बेटे, लगता है आज तुम्हारा ग्रन्थ समाप्त हो गया!"

आश्चर्यचकित पुत्र ने कहा, "सच मां, आज शाम को ही उसकी इतिश्री हुई। लेकिन, आपने कैसे जाना? मैंने तो इसकी चर्चा तक नहीं की!"

"क्योंकि बेटे, पिछले छह महीनों से मैं बिना नमक का ही खाना बना रही हूं, तुमने आज ही नमक के अभाव को लक्ष्य किया तो मैं समझ गयी कि निश्चित रूप से, आज ही तुम्हारा ग्रन्थ समाप्त हुआ।"

तो देखा बच्चो! आओ, इसी तरह की एक और कहानी सुनें—

उमर नाम के खलीफ़ा वक्त के बहुत पाबन्द थे, रोज निश्चित वक्त पर नमाज़ पढ़ते, एक बार भी नागा नहीं होता। नमाज़ के वक्त खुदा में ऐसे डूब जाते कि उन्हें भी दुनिया-जहान का कतई होश नहीं रहता! एक दफ़ा उनके पैर में एक कांटा गहरे धंस गया, दर्द से उनका हाल बेहाल हो गया।

किसी के हाथ की छुअन भी वे बर्दाश्त न कर पा रहे थे, उसे निकालने का तो सवाल ही नहीं पैदा होता। सभी खलीफ़ा के गम में गमगीन, हाथ पर हाथ धरे बैठे हुए थे कि अचानक एक वृद्ध फुसफुसाये, "कांटा निकालने की कोशिश अभी छोड़ दीजिये, थोड़ी ही देर में इनकी नमाज़ का वक्त हो जायेगा, तब आराम से इनका कांटा भी निकल जायेगा।"

वृद्ध की बात सुन कुछ लोग हैरत में पड़ गये, कुछ मूंछों ही मूंछों में मुस्कुराने लगे, कुछ खलीफ़ा-महोदय के लिए बड़ी चिन्ता में पड़ कर कोई दूसरा उपाय सोचने लगे...।

नमाज़ का वक्त हो गया। खलीफ़ा उसमें डूबे हुए थे। हकीम ने कांटा खींच कर निकाल दिया, खलीफ़ा को कुछ महसूस तक न हुआ...

वहां मौजूद सभी दांतों तले उंगलियां दबा रहे थे!

बच्चो, तुम सबकी आंखें भी फटी की फटी रह गयीं न! लेकिन जानते हो, ऐसी एकाग्रता सम्भव है। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं।

नये साल का यही उपहार है तुम सबके लिए—अपनी एकाग्रता को बढ़ाओ। खूब बढ़ाओ, खूब बढ़ाओ और आज ही खुद से वादा कर लो कि "अब से मैं हर काम, छोटे-से-छोटा कार्य भी पूरे मनोयोग के साथ करूंगा।"

क्या नहीं बनना चाहोगे तुम टोडरमल या खलीफ़ा महोदय के जैसे?

प्रण कर लो तो तुम नूतन वर्ष के इस बहुमूल्य उपहार की अद्‌भुत विशेषता जल्दी ही जान जाओगे।

—वन्दना

निरन्तरता जीवन का सार है।

अग्निशिखा का वार्षिक शुल्क:
एक वर्ष—१८० रु.; तीन वर्ष—५२० रु.; पांच वर्ष—८६० रु.।
पत्रिका हर महीने की ४ तारीख को प्रेषित की जाती है।

उनकी कृपा का स्पर्श कठिनाई को सुयोग में, विफलता को सफलता में और दुर्बलता को अविचल बल में परिणत कर देता है। भगवती माँ की कृपा परमेश्वर की अनुमति है, आज हो या कल, उसका फल निश्चित है, पूर्वनिर्दिष्ट अवश्यंभावी और अनिवार्य है ।

— श्रीअरविन्द

अमरनाथ शिक्षण संस्थान, मथुरा (उ.प्र.)

फोन– 0565–3240006, 9358340375

Website : anvaschool.org, Email-amarnath.mtr1@rediffmail.com

Date of Publication: 1st Janaury 2017
Rs. 15.00 (Monthly) Registered: SSP/PY/47/2015-2017
RNI No.18135/70 WPP No.TN/PMG/(CCR)/WPP-472/15-17

A school by The Vatika Group vatika

Holistic

"MatriKiran believes in holistic development and Yoga, Clay Modelling, Indian Music and Ballet are part of its curriculum. The need for extra classes does not arise at all."

Upasana Mahtani Luthra
Mother of Nonik, Grade 4 and Nritu Luthra, Grade 6

Nature Friendly

"Being a doctor myself, it was very important for me that the school environment should be healthy. Class rooms in MatriKiran are nature friendly, spacious, well ventilated and they open out to green spaces... in communion with nature."

Dr Nidhi Gogia
Mother of Soham Sharma, Grade 1

ADMISSIONS OPEN
Academic Year 2016-17

MatriKiran

Junior School SOHNA ROAD
Pre Nursery to Grade 5

Senior School VATIKA INDIA NEXT
Grade 6 to Grade 8

www.matrikiran.in | +91-124-4938200, +91-9650690222
Junior School: W Block, Sec. 49, Sohna Rd, Gurgaon • **Senior School**: Sec. 83, Vatika India Next, Gurgaon